कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

Year 15, Issue 57
Jan.-March, 2018

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR-PUBLISHER : Dr. Sneh Thakore - Awarded By The President Of India
Limka Book Record Holder

संपादन व प्रकाशन
डॉ. स्नेह ठाकुर
भारत के राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत
लिम्का बुक रिकॉर्ड होल्डर

वर्ष १५ - अंक ५७, जनवरी - मार्च २०१८

कल का सूरज

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

मैं कल फिर आऊँगा
उगूँगा बंजर खेत में
किसी आत्महत्या करते किसान के
उजाला बाटूँगा अँधियारे घरों को
जहाँ आज भी बच्चा लालटेन की रोशनी में
ककहरा याद करता है
उष्णता दूँगा उस हिम-पुरुष को
जो ठिठुरते काट रहा है सर्दी
दादा-परदादा के फटे हुए कम्बल में
धधकूँगा ज्वाला बन
शोषण-अन्याय-ईर्ष्या-द्वेष और पूर्वाग्रहों के विरुद्ध
तपूँगा किसी सूर्यपुत्र की तरह
'अग्निसागर' का अग्निसागर बन
मेरे मित्र, मुझे गलत मत समझना
मैं अस्ताचल को बढ़ते हुए उदास अवश्य था
पर हारा नहीं हूँ
मैं आज भी लड़ रहा हूँ
एक अनंत युद्ध से
तुम्हारे सुख के लिए
विश्व-शांति और वसुधैव कुटुम्बकम् के लिए
मैं डूबता सूरज हूँ
कल का यौवन हूँ
चढ़ते सूरज को प्रणाम करने वाले दोस्त,
मैं निराशा को आशा में बदलता
जन-जन का जीवन हूँ.

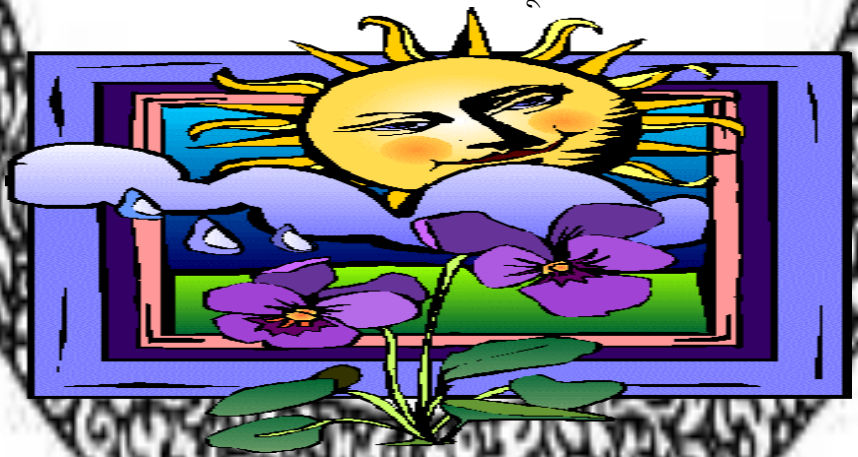

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : डॉ. स्नेह ठाकुर

(पोस्ट-डॉक्टरल फ़ेलोशिप अवार्डी)

भारत के राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति भवन में "हिन्दी सेवी सम्मान" से सम्मानित

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
नव संवत्सर आ गया	मनोज कुमार शुक्ल ''मनोज''	३
शताब्दी एक्सप्रेस का टिकट	पद्मश्री डॉ. नरेन्द्र कोहली	४
जब इरादे हों अटल से	छाया शुक्ला "छाया"	६
मदन महीपजू को बालक बसंत	डॉ. नामवर सिंह	७
होली	दिनेश कुमार	१०
अपत्नी	ममता कालिया	११
औरत पालने को कलेजा चाहिये	शैल चतुर्वेदी	१४
साहित्य और समाज के रिश्ते	प्रो. गिरीश्वर मिश्र	१७
भारत माता का मंदिर यह	मैथिली शरण गुप्त	२०
होली	डॉ. स्नेह ठाकुर	२२
एक थी गौरा	अमरकांत	२३
गर्म सलाखें	उपासना गौतम	२४
विलुप्त होती भाषाएँ और हिन्दी	प्रो. विनोद कुमार मिश्र	२६
एक विलक्षण अनुभूति	डॉ. दीप्ति गुप्ता	२७
सुभाषितसाहस्त्री	पद्मभूषण प्रो. सत्यव्रत शास्त्री	२९
भारत की भाषायी गुलामी	डॉ. वेदप्रताप वैदिक	३२
माँ की याद	आलोक कुमार सिंह	३३
साहित्य के आकाश का ध्रुवतारा - विष्णु प्रभाकर	सपना मांगलिक	३४
ग़ज़ल	दयानन्द पाण्डे	४३
कल का सूरज	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	१ अ
डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार		४४ अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00, भारत - रु. ६००.००

डाक द्वारा By Mail, Canada & USA.....$35.00, Other Countries.....$40.00

Website: http://www.Vasudha1.webs.com

e-mail: dr.snehthakore@gmail.com

संपादकीय

ईश्वर की अनन्त कृपा एवं अपने सभी लेखकों, पाठकों, शुभचिंतकों की शुभाशीषों से 'वसुधा' अपने जीवन के पन्द्रहवें वर्ष में पदार्पण कर रही है. वसुधा अपने सभी हितैषियों के अनंतर अनंत्य सहयोग के प्रति तहे-दिल से आभारी है और श्रद्धा-वनत् प्रार्थना-पूर्ण-कामना करती है कि परमेश्वर इन सम्बन्धों को अक्षुण्ण बनाए रखे.

वसुधा के माध्यम से ठाकुर साहब व मैं परमात्मा के प्रति नतमस्तक, सभी के प्रति हृदय से आभारी, 'सर्व मंगल मांग्यले' की अनुभूति से अभिभूत, इस नव-वर्ष हेतु परस्पर स्नेह-भाव से सिंचित सर्व-कल्याण की दुआ माँगते हैं.

भारतीय संस्कृति का अनमोल पर्व 'होली' स्वयं की महत्ता से महिमामण्डित है क्योंकि होली जहाँ ईश्वर की सत्ता स्वीकार करने का त्योहार है कि हर विषम से विषम परिस्थिति में ईश्वर अपने भक्त की रक्षा करता है, विकट से विकट अवस्था में उसे सुरक्षित रखता है, होलिका-दहन व हिरण्यकशिपु-वध से बुराई का अंत कर, भगवान में परम आस्था रखने वाले अपने भक्त प्रह्लाद का मन सत् चित् आनंद से भर देता है, वहीं यह त्योहार अगली-पिछली वैमनस्यता भुला कर मित्रता का हाथ थामे स्वयं की व दूसरे की कालिमा, कलुषता मिटाकर सौहार्द्रपूर्ण भाव से एक-दूसरे पर सच्चिदानंद के शुभ रंगों की वर्षा करने की शिक्षा भी देता है. जब आप कलुषता की कालिमा को त्याग भाईचारे के पावन-पुनीत शुभ रंगों से दूसरे को प्लावित करते हैं तो उसके छींटे आप पर भी पड़ते हैं जो न केवल दूसरों के जीवन में वरन् आपके जीवन में भी खुशियों की बहार लाते हैं. आइए इस भावाव्यक्ति के साथ हम होली का संकल्प लें और मानवता को आदर्श-प्रेम के रंग में रंग कर, सराबोर कर भारतीय होली का उत्कृष्ट शुभ संदेश विश्व में स्थापित करें.

हम देश में रहें चाहे विदेश में, इतनी अमूल्य रत्न-जटित भारतीय संस्कृति जो हमें विरासत में मिली है, उसका प्रचार-प्रसार न करना आत्म-हनन होगा. वर्तमान व भावी पीढ़ी के लिए चाहे वह भारतीय हो या प्रवासी भारतीय, भारतीय संस्कृति की मशाल जलाये रखने के लिए हमें प्रतिबद्ध होना है. सबकी प्रतिबद्धता सराहनीय होगी.

नारी-दिवस पर विश्व की प्रत्येक नारी को अनेकानेक मंगल कामनाएँ. जहाँ एक ओर यह सत्य है कि नारी सृष्टि की धुरी है वहीं दूसरी ओर यह भी उतना ही सत्य है कि पुरुष का कल्याणकारी यथोचित् सहयोग सृष्टि को आनंददायी बनाने हेतु आवश्यक है. नारी और पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं, न कोई छोटा, न कोई बड़ा, समान रूप से एक-दूसरे के पूरक बन कर ही वे, एक इकाई में परिवर्तित हो, विश्व में सत्यं, शिवं, सुंदरम् की धारणा स्थापित करने में समर्थ हो सकते हैं.

परमात्मा की असीम अनुकम्पा एवं आप सबके अनन्य प्रोत्साहन से मेरी पुस्तक 'नाकंडा अम्माँ', आदरणीय एवं प्रिय अम्माँ की अध्यात्मिक जीवनी का चतुर्थ संस्करण तथा भक्त-वत्सल श्रीराम की असीम कृपा से मेरे उपन्यास 'लोक-नायक राम' का तृतीय संस्करण प्रकाशित हो गया है. सभी हितैषियों के प्रति हार्दिक आभार. विनयपूर्वक आशा है कि आप सबका प्रोत्साहन भविष्य में भी मेरा सम्बल बन, यथोचित् उत्साह-वर्धन कर मेरी कृतियों में प्राण-संचरित करता रहेगा.

हिन्दी के प्रचार-प्रसार-उन्नयन के प्रति सभी हिन्दी-प्रेमियों की निष्ठा को नमन करते हुए, 'जोत से जोत जलाते चलो' की भाव-भूमि पर स्थिर, भविष्य में और भी उन्नति के सोपान चढ़ने की कामना सँजोए,

सस्नेह, स्नेह ठाकुर

नव संवत्सर आ गया

मनोज कुमार शुक्ल "मनोज"

नव संवत्सर आ गया, खुशियाँ छाईं द्वार ।
गले मिल रहे लोग सब, दें बधाई उपहार ।।

ब्रह्मा की इस सृष्टि की, गणना हुयी आरम्भ।
संवत्सर की यह प्रथा, सतयुग से प्रारम्भ ।।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को, आता है नव वर्ष।
धरा प्रकृति मौसम हवा, मन को करता हर्ष।।

नवमी में जन्मे प्रभु, अवध पुरी के राम ।
रामराज्य से बन गये, आदर्शों के धाम ।।

राज तिलक उनका हुआ, नव रात्रि शुभ दिन।
नगर अयोध्या भी सजा, हरषित हर पल छिन।।

नव रात्रि आराधना, मातृ शक्ति का ध्यान ।
रिद्धी-सिद्धी में सब जुटे, माँगें जग कल्यान ।।

सूर्यवंश के राज्य में, रोशन हुआ जहान ।
चक्रवर्ती राजा बने, विक्रमादित्य महान ।।

स्वर्ण काल का युग रहा, जन जन के सरताज ।
विक्रम सम्वत् नाम से, गणना का आगाज ।।

बल बुद्धि चातुर्य में, चर्चित थे सम्राट ।
शक हूणों औ यवन से, रक्षित था यह राष्ट्र।।

आज दिवस गुड़ि पाड़वा, चेटी चंड त्योहार।।
माँ देवी की अर्चना, वंदन औ फलाहार ।

शताब्दी एक्सप्रेस का टिकट

पद्मश्री डॉ. नरेन्द्र कोहली

"लखनऊ शताब्दी में लखनऊ तक के लिए एक टिकट ।" मैंने खिड़की बाबू से कहा।

"फारम भरो।" उसने आदेश दिया।

"फार्म भर कर आपके सामने रखा है।" मैंने कहा, "अपना सिर उठाइए। उसपर कृपादृष्टि डालिए।"

उसने वह फार्म उठा कर मेरी ओर फेंक दिया, "अँग्रेजी में भरो। यह ऐंडा बैंडा लिखा हुआ कौन पढ़ेगा यहाँ ? झुमरीतलैया समझ रखा है। यह दिल्ली है, कैपिटल ऑफ इन्डिया।"

"यह ऐंडा बैंडा नहीं है।" मैंने कहा, "यह हिन्दी है। भारत की राष्ट्र भाषा।"

"तो इसे राष्ट्र भाषा विभाग में ले जाओ।" वह बोला, "हम तो रेलवे के आदमी हैं। अँग्रेजी में काम करते हैं, जो सारे संसार की मातृभाषा है।"

"गाड़ी दिल्ली से चलेगी?" मैंने पूछा।

"बिल्कुल दिल्ली से चलेगी। होनोलुलू से तो चलने से रही।" वह बोला।

"तो दिल्ली हिन्दी प्रदेश है।" मैंने अपना स्वर ऊँचा कर लिया।

"नक्शे में है। जरा बाहर निकल कर देखो बाज़ार में एक भी बोर्ड हिन्दी में है? पैखाना उठाने की भी लिखत-पढ़त अँग्रेजी में होती है यहाँ" वह बोला, "प्यारे भाई! सपनों से जागो। यथार्थ से आँखें मिलाओ। पता नहीं, दिल्ली अँग्रेजों के हृदय में बसती है या नहीं, पर दिल्ली के हृदय में अँग्रेजी बसती है। बड़े-बड़े से लेकर द्वार-द्वार भटकने वाला, साधारण सेल्समैन तक अँग्रेजी ही बोलता है। कोई भला आदमी मुँह खोलता है तो उसमें से अँग्रेजी ही झराझर बरसती है।"

मैंने चुपचाप अँग्रेजी में फार्म भर दिया, "यह लो।"

उसने तब भी मुझे टिकट नहीं दिया। एक फार्म और आगे सरका दिया, "ज़रा इस पर भी अपने ऑटोग्राफ दीजिए।"

"यह क्या है?"

"पढ़े-लिखे हो, पढ़ लो।"

"नहीं! मैं पढ़ा लिखा नहीं हूँ।" मैं बोला, "तुम ही बताओ।"

"वह तो मैं पहले ही समझ गया था। अनपढ़ हो, तभी तो हिन्दी-हिन्दी कर रहे हो।" वह बोला, "अब जरा ध्यान से सुनो। इस गाड़ी में सारी घोषणाएँ अँग्रेजी में होंगी। इस कागज पर लिखा है कि तब तुम कोई आपत्ति नहीं करोगे?"

"हिन्दी में कोई घोषणा नहीं होगी?"

"होगी। पर वह तुम्हें समझ में नहीं आएगी।"

"क्यों? मेरी मातृभाषा हिन्दी है। मैं हिन्दी पढ़ा लिखा हूँ। और हिन्दी में काम करता हूँ।" मैंने कहा।

"इसलिए कि घोषणा करने वालों का साउंड बॉक्स विदेशी है।" वह बोला, "तो नहीं करोगे न आपत्ति?"

"नहीं करूँगा।"

"करो साइन।"

"मैंने हस्ताक्षर कर दिए।"

"अखबार अँग्रेजी का मिलेगा।" वह बोला, "तुम हिन्दी का अखबार नहीं माँगोगे?"

"होना तो यह चाहिए कि सबको हिन्दी का समाचार पत्र दिया जाए?" मैंने कहा, "कोई विशेष आग्रह करे तो उसे अँग्रेजी का दे दिया जाए। सब पर अँग्रेजी क्यों थोप रहे हो?"

"टिकट लेना है या नहीं। लखनऊ जाना है या नहीं?"

"लेना है। लेना है।" मैंने घबराकर कहा।

"तो, साइन करो।"

"किया।" मैंने हस्ताक्षर कर दिए।

"बैरा अँग्रेजी बोलेगा।" उसने कहा, "तुम्हें बाबूजी नहीं, 'सर' बोलेगा, 'राम-राम नहीं करेगा, गलत उच्चारण में 'गुड मार्निंग' कहेगा। नाश्ते को 'ब्रेकफास्ट' कहा जाएगा, खाने को लंच। पानी को वाटर। बिस्तर को बेड। बोलो, आपत्ति तो नहीं करोगे?"

"पर ऐसा क्यों होगा?"

"टिकट चाहिए या नहीं?"

"चाहिए।"

"तो साइन करो। सवाल जवाब मत करो।"

"किया।"

"स्टेशनों और दूसरी चीजों के विषय में जो सूचनाओं की पट्टी आएगी, वह अँग्रेजी में आएगी। हिन्दी की पट्टी की माँग नहीं करोगे।"

"क्यों नहीं करूँगा ....यह भारत है....अमरीका नहीं।"

"तो बैलगाड़ी या टमटम से लखनऊ चले जाओ।" वह बोला, "शताब्दी एक्सप्रेस का टिकट नहीं मिलेगा।"

"मैंने हस्ताक्षर कर दिए।"

"यात्रा के अंत में एक छोटा सा फारम दिया जाएगा, उसे भरना होगा और अँग्रेजी में भरना होगा। तब यह कह कर इंकार नहीं कर सकोगे कि तुम्हें अँग्रेजी नहीं आती। जितनी भी आती है, उसी में भरना होगा।"

"पर क्यों?"

"टिकट चाहिए या नहीं।"

"चाहिए।"

"तो साइन करो।"

"मैंने हस्ताक्षर कर दिए।"

"अपनी ओर से किसी से भी कोई प्रश्न अँग्रेजी में नहीं करोगे।"

"क्यों?"

"क्योंकि उनमें से किसी को भी अँग्रेजी नहीं आती।"

"तो फिर यह सब...?"

"टिकट चाहिए या नहीं?"

"चाहिए।"

" तो साइन करो। और हिन्दी में नहीं अँग्रेजी में।" "मैंने हस्ताक्षर कर दिये।"

जब इरादे हों अटल से

छाया शुक्ला "छाया"

शाम की होगी विदाई देखना ।
और तारों की सगाई देखना ।
जब इरादे हों अटल से आपके
कैद से होगी रिहाई देखना ।

धूप आधी और अधूरी चाँदनी
जिन्दगी फिर भी हँसाई देखना ।
खिलखिलायेंगे उसी में हम प्रिये
तुमसे वादा है भलाई देखना ।

उड़ गई चिड़िया हमारे खेत की
सह न पायेंगे जुदाई देखना ।
चाँद तारे भी मिले मुझको बहुत
क्यों हुई सबकी विदाई देखना ।

था अनोखा खेल “छाया” के लिए
धूप से जो की लड़ाई देखना ।

मदन महीपजू को बालक बसंत

डॉ. नामवर सिंह

लिखने बैठा कि देव के कवित्त की यह आखिरी कड़ी फिर सुनाई पड़ी। न जाने क्या हो गया है मेरे पड़ोसी मित्र को! आज भोर की उनींदी श्रुति में भी वे यही कवित्त उँड़ेल रहे थे और ज्यों ही वे कोकिल हलावे हुलसावे करतारी दै गा रहे थे कि काकभुशुंडिजी के मानस पाठ से मेरी नींद खुल गयी। उठकर देखता क्या हूँ कि सामने नीम की काली कुरूप नंगी डाल पर स्वर की साक्षात् श्याममूर्ति बैठी है - गोया उसी में से उगी हो। उठकर शरीर सो गया, लेकिन दिल बैठा ही रहा। मैंने लाख समझाया कि महाराज, मैं गरुड़ नहीं; लेकिन उन्हें तो प्रवचन पिलाना था। मन कभी-कभी अपने को ही छलने लगता है और कुछ कटु अनुभूति के क्षणों में तो प्राय: इन अधरों से कोई न कोई सरस गीत निकल जाया करता है। सो उस समय भी रेतीले अधरों से गीत की लहर उठी -

सरस बसन्त समय भल पाओल, दखिन पवन बह धीरे

गीत मन से ऐसे उठा गोया अपना ही हो - और शरीर भी कटु यथार्थ को भुलाकर व्यर्थ दखिन पवन के लिए अँगड़ा उठा। लेकिन, प्रकृति के मजाक को क्या कहूँ! पूर्वी खिड़की से दनादन धूल-भरे दो-तीन झोंके आ लगे। सिर उठाकर बाहर देखा तो पगली पुरवैया ने अँधेर मचा रखी है। यही नहीं, गउओं के ताजे गोबर की भीनी-भीनी गंध भी कुछ कम परेशान नहीं कर रही है। परंतु, यह बसन्त तो है ही। होली अभी कल ही बीती है और हमारे एक वचन मित्र का जो बहु वचन कंठ फूट या फट चला है, वह कुछ यों ही नहीं!

कुछ घंटे बाद इस बार फिर वही कवित्त सुनाई पड़ा तो वह दर्द उठा कि मुस्करा दिया। दर्द इसलिए कि सामने जहाँ तक दृष्टि जाती है बसन्त की दो छवि दिखाई पड़ रही है। एक ही चौखटे में एक ओर कुछ और है, और दूसरी ओर कुछ और! एक ओर तो मदन महीपजू के दुलारे बालक का चित्र है और दूसरी ओर... पता नहीं किस नाम-हीन, रूप-हीन व्यक्ति का शिशुरूप! कानन चारी कवि लोग राजा के लड़के की बलैयाँ ले रहे हैं और ये संकोची आँखें टुकुर-टुकुर देख रही हैं! रूखा-रूखा-सा रेतीला प्रकाश और उस प्रकाश में हिलती हुई बिहारी की नायिका को धीरज बँधाने वाली हरी-हरी अरहर! वृंतों पर बैठे हुए तितलीनुमा सहस्रों पीले-पीले फूल जिन्हें देखकर ऐसा लग रहा है कि जरा-सी आहट पाने पर फुर्र से उड़ जायेंगे। उसके बगल में ही ठिगने-ठिगने चने जिनकी बंद अक्षिकोष सी ठोंठी पुकार-पुकारकर कह रही है - 'मो आँखियान को लोनी गयी लगी!' और उन्हीं के बीच-बीच में दुबली-पतली इकहरी छरहरी तीसी, जिसकी अधखुली आँखों में फूले फिरने वाले घनश्याम अब शालिग्राम की बटिया बनने जा रहे हैं! इनसे कुछ ही दूर पर बची-खुची रसगाँठी नागबेलि की सुरभि-चँवर सी कास झाड़ियाँ गोया धरती से बादल उग रहे हों! ऐसी ही रंग-बिरंगी चित्तियों का हाशिया बनाने वाला - गेहूँ जौ का वह आक्षितिज रोमांचित पीलापन! कहाँ से उपमा लाऊँ इन सबके लिए? पुराने कवि तो इन्हें केवल खाने की चीज समझते थे, लिखने योग्य तो कुछ फूल थे! ब्रज माधुरी में पगे जीवों की रचनाओं को देखकर लगता है कि उस समय धरती पर चारों ओर गुलाब, चमेली, चम्पा, कमल आदि ही बोये जाते थे - अनाज कहीं-कहीं या नहीं। शायद लोग सुगंधित हवा पीकर जीते थे। रहे आज के बासन्ती कवि - वे दाना खोजते हैं, पौधे नहीं!

खेतों से उठकर आँखें अनायास ही उस गँझोर बँसवारी की ओर उड़ी जा रही हैं जिसकी तोतापंखी पत्तियाँ बहुत कुछ पीली हो चली हैं और हवा की हल्की-सी हिलोर उठते ही सुंदर हिमपात

की तरह अंतरिक्ष से बरस पड़ती हैं। उसी से सटी है वह सूखती गड़ही जिसका पंकिल जल नीले आकाश से होड़ ले रहा है। न उनमें कलम, न कुमुद! रही होगी पुराने कवियों के आँगन-आँगन में बावली, बावली-बावली में कमल, कमल-कमल में भौंरे और भौंरे भौंरे में गुंजार! यहाँ तो उस गड़ही में रंक की फटी चादर सी काई है और भौंरों के नाम पर आ गये हैं कुछ अंधे हड्डे जिनकी कृपा से फूल सरीखे बच्चे दिन में एक दो बार जरूर रो देते हैं। अगर गड़ही खाली है तो वह लखराँव ही कौन सजा-सजाया है! काव्य कल्पनाओं से भरा हुआ मन ही उदास हो जाता है, उसे देख कर। पंचवाण का तरकस ही खाली। सबसे पहले अशोक ही नदारद। अच्छा है, अन्यथा उसे खिलाने में भी फजीहत। उस पर पद प्रहार करने के लिए इस गाँव का कौन आदमी अपनी बहू-बेटी को पेड़ पर चढ़ने देता और इस महँगी में नूपुर गढ़वाना पड़ता सो अलग। कर्णिकार यदि अमलतास ही है तो वह है जरूर, लेकिन सिर से पैर तक नंग-धड़ंग 'अपर्ण श्री शाल'। पता नहीं कालिदास ने कैसे बसन्त में ही इसके फूल देख लिये थे। अच्छा है, आजकल ग्रीष्म में जो खिलता है लेकिन बिना किसी सुंदरी का नाच देखे ही। कुरबक साहब का न होना बहुत अच्छा है। कौन कामिनी उनका आलिंगन करके अपने पति का कोपभाजन बनती। सबसे अच्छा है बकुल का न होना। मुश्किल से मिली ठर्रा और उसका भी कुल्ला करे तो जनाब के होंठों पर हँसी आये। और न जाने कमबख्त कौन-कौन फूल हैं जो पुराने कवियों के सामने हाथ जोड़े रहते थे। और तुर्रा यह है कि उनमें से नब्बे फीसदी बसंत में ही खिलते थे। अब वे सब कहाँ रहे। हमारे गाँव ही में कितना परिवर्तन हो गया। 'परसिया' का टीला कल्पना की आँखों में साफ आ रहा है, जिसका अब केवल नाम ही शेष है। अभी हमारे होश में वहाँ पलाशों का वन था - उन पलाशों के आधे सुलगे आधे अनसुलगे कोयले से फूल बैसाख में लहक उठते थे। अब वह जमींदार का खेत हो गया जिसमें बीज तो पड़ते हैं परंतु भीतर जमने वाली बरौनियों की तरह शायद उसके पौधे धरती में नीचे की ओर उगते हैं। नागफनी का वह जंगल भी कहाँ रहा, जिसके पीले फूलों को बचपन में हम सनई में खोंसकर नचाते थे तथा लाल फलों को फोड़कर गाफ खेलते थे या स्याही के रूप में प्रयोग कर मुंशी जी की छड़ी खाते थे। तेहि नो दिवसा गत:!

आज भी इस लखराँव में बौराये आमों के घवर-घवर दिखाई पड़ रहे हैं। कुछ तो पीले से झाँवरे हो चले हैं और उनसे सरसई भी लग रही है। लेकिन उनमें किलकारती हुई शाखामृगों की टोलियाँ! अभी अभी हवा विद्रूप हँसी के साथ गुनगुना कर चली गयी - विहरति हरि रिह सरस बसन्ते! महुआ अभी कूचा ले रहा है। उसकी आँखों के साँवरे कोनों में बड़े-बड़े उजले आँसू की बूँदें रुकी हैं या पता नहीं सूख गयी हैं? गोया प्रकृति के चेहरे पर बसन्त का कोई चिह्न नहीं।

इतनी दूरी तक उड़ते रहने के बाद मन लौट कर आ गया है। टेबुल पर पड़े रंगीन अखबार के ऊपर। अभी होली से एक दिन पहले इन कागजी अश्वों और अश्विनीकुमारों से शहर की सड़कें ही नहीं, गली-कूचे भी भर गये - जैसे दफा १४४ लगने पर शहर की सड़क सिपाहियों के मुश्की घोड़ों से रँग उठती है। देखते-देखते इन कागजी घोड़ों के खुरों से ऐसी लाल गर्द छा गयी कि आकाश ढँक गया आकाश बदल कर बना मही! दुनिया ने देखा कि खून के कई रंग होते हैं या बना दिये जाते हैं। ये सभी रंग बदलकर शहर की रगों में दौड़ रहे थे लेकिन यहाँ तो -

रगों में दौड़ने फिरने के हम नहीं कायल, जो आँख ही से न टपका वो फिर लहू क्या है ?

संसार में हल्ला मच गया कि बसंत आ गया और जो धीरे से किसी पत्रिका को रोक कर पूछिए कि 'ऋतु बसंत का आना रंगिणी तूने कैसे पहचाना?' तो शायद व्यतिषजाति पदार्थानांतर: कोऽपि हेतु: के सिवा उसके पास कोई दूसरा उत्तर न मिले! क्योंकि गला पकड़े जाने पर बड़े लोग किसी अनिर्वचनीय आंतरिक कारण का ही सहारा लेते हैं जिसमें बहस की गुंजाइश न रहे! मालूम होता है

विश्वस्त सूत्र से इन्हीं को सब बातें मालूम होती हैं पहले! फिर प्रकृति से इनका आंतरिक संबंध न रहे तो किसका रहे! ये जनमत के नहीं प्रकृतिमत के भी तो वाहन हैं - मौसमी खबरें जो छपती हैं! नोटों की आँखों ने क्षितिज के पार ऋतुराज का स्वर्णरथ देख लिया तो क्या आश्चर्य! इसी धातु की आँखों से मंदिरों की मूर्तियाँ भी 'आगमजानी' बनी बैठी हैं।

लेकिन जिनके पास चाँदी की आँखें नहीं हैं, उन कवियों को इस पतझर में भी बसंत कैसे दिखाई पड़ रहा है? सुनता हूँ खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है - यों उसे आँखें नहीं होतीं, परंतु आदमी के तो आँखें होती हैं और वे भी कभी-कभी दो का पहाड़ा पढ़ने लगती हैं। इसलिए देखा-देखी मनुष्य बसंत के प्रभाव से उन्मत्त हो उठा तो क्या गुनाह? कवि गोष्ठियों और संगीत समितियों में तो ऐसा रोज ही होता है। दो-एक बड़े-बड़े सिरों को हिलते देख कुछ और भी सिर जो हिला करते हैं तो क्या कोई कहेगा कि महीन डोरा बँधा है? डोरे में कहाँ ताकत जो सँभाले वैसी झकझोर? देर से समझने वालों के सिर देर तक और बहुत जोर से हिलते हैं - नये मुल्ले की बाँग की तरह। तो, सभाओं में खाँसी और ताली ही नहीं, समझदारी और सहृदयता भी संक्रामक होती है। मैंने समझा था कि नीर-क्षीर विवेक और कमल-कुमुद विकास जैसी अनेक कवि-प्रसिद्धियों के संक्रामक भक्त कवि अब नहीं रहे, लेकिन अभी-अभी सामने आया बसन्त शीर्षक कविता में जिन देखे अनदेखे धराऊँ फूलों की फेहरिस्त गिनायी गयी है उन्हें पढ़ते हुए बार-बार खटक रहा है कि बसंत के पहले किसी भले पद का लोप तो नहीं हो गया है या संपादक जी ने शिष्टतावश सुधार तो नहीं दिया है?

कवि-मंडली ही नहीं, दूसरे समाजों में भी यही संक्रामकता फैली हुई है। अभी-अभी होली के एक दिन पहले एक सात वर्ष के शहरी छोकरे ने मुझ पर जो पिचकारी चला दी वह मेरी समस्त नीरसता को चुनौती थी। उसकी उछल-कूद की तो बात छोड़िए - मादक कबीरा ऐसा गा रहा था कि सौ-सौ जवान मात! उसे कौन सा उद्दीपन है सिवा इसके कि उसके माँ-बाप या मास्टर ने कह दिया होगा कि कल होली है! छोटा-सा छोकरा या तो कहीं गुड्डी उड़ाता या खा-पीकर सोया होता, लेकिन होली का नाम सुनते ही परसों उछल पड़ा! खैर, वह तो लड़का है; बड़े-बड़ों को बताया न जाय तो उन्माद न आय। पत्रा ने कहा : आज होली है और बिना नशा का नशा! सादा शर्बत पिला कर कह दिया कि विजया थी - जनाब झूमने लगे। पेड़-पत्ते उदास हैं और लोग कपड़ों के फूल लगा कर फूले फिर रहे हैं! प्रकृति से दूर-दूर अब तो 'पत्रा ही तिथि पाइये।' आह आदिम बसन्त की वह वन्य प्रकृति। आदिम युवक और युवती के हृदयों में वह रंगीन सुगंध सुलग उठी होगी। न पत्रा न कैलेंडर और न ऋतुओं का भैरवी चक्र! श्रमसिक्त रोमांचित बाँहों का वह उद्दाम पाशविक आलिंगन! हम पत्रा देखकर दुहरा रहे हैं। 'पेट में डंड पेलते चूहे जबाँ पर लफ्ज प्यारा!' पंडित जी को कान ही नहीं, सिद्धा भी देते हैं।

काश, मैं भी इस हँसी के साथ दाँत चिआर पाता! लेकिन इस हृदय की कुछ गाथा ही ऐसी रही है! बचपन में ओझाई सीखने गया, साथ में एक मित्र भी थे। घंटे-भर अंजलिबद्ध हाथ फैलाने के बाद कष्ट से काँप तो उठा परंतु देवागम का दूसरा कोई अनुभाव शरीर पर न दिखाई पड़ा। मित्र 'ओझा' बन गये - यों वे सिंह थे। जहाँ बैठकर लिख रहा हूँ, वहाँ से एक रईस के उद्यान के कचनार आदि कुछ फूल दिख रहे हैं। चाहूँ तो उन्हें गिना सकता हूँ, लेकिन लगता है कि वे अपने नहीं हैं। बसंत पर लिखते समय लोगों की आँखों में फूल तैर रहे हैं और इन आँखों में फूल से मनुष्य के ऊपर लटकती हुई नंगी तलवार की छाँह! अखबारों में हल्ला हो गया कि बसन्त आ गया। उन्हीं में तो यह भी हल्ला है कि स्वराज्य हो गया! रोज अखबारों की हेडलाइनें चीख रही हैं। मैं सुन रहा हूँ कि दोनों स्वर एक ही गले से निकल रहे हैं। लेकिन यहाँ न तन और हुआ, न मन, और न बन। यहाँ तो डार-डार डोलत अँगारन के पुंज हैं। इन आँखों के सामने बसन्त का मौलिक रूप है और लोग दिखा रहे हैं रंगीन चित्र!

परंतु यह भी देख रहा हूँ कि मदन महीप के लाड़ले के पीले-पीले स्वर्णिम आभूषण धूल में झड़ रहे हैं और उसी धूल से प्रत्यग्र पुष्प की लाली-सा बसंत का अग्रदूत उठ रहा है जो अब तक पार्श्वछवि समझा जाता था!

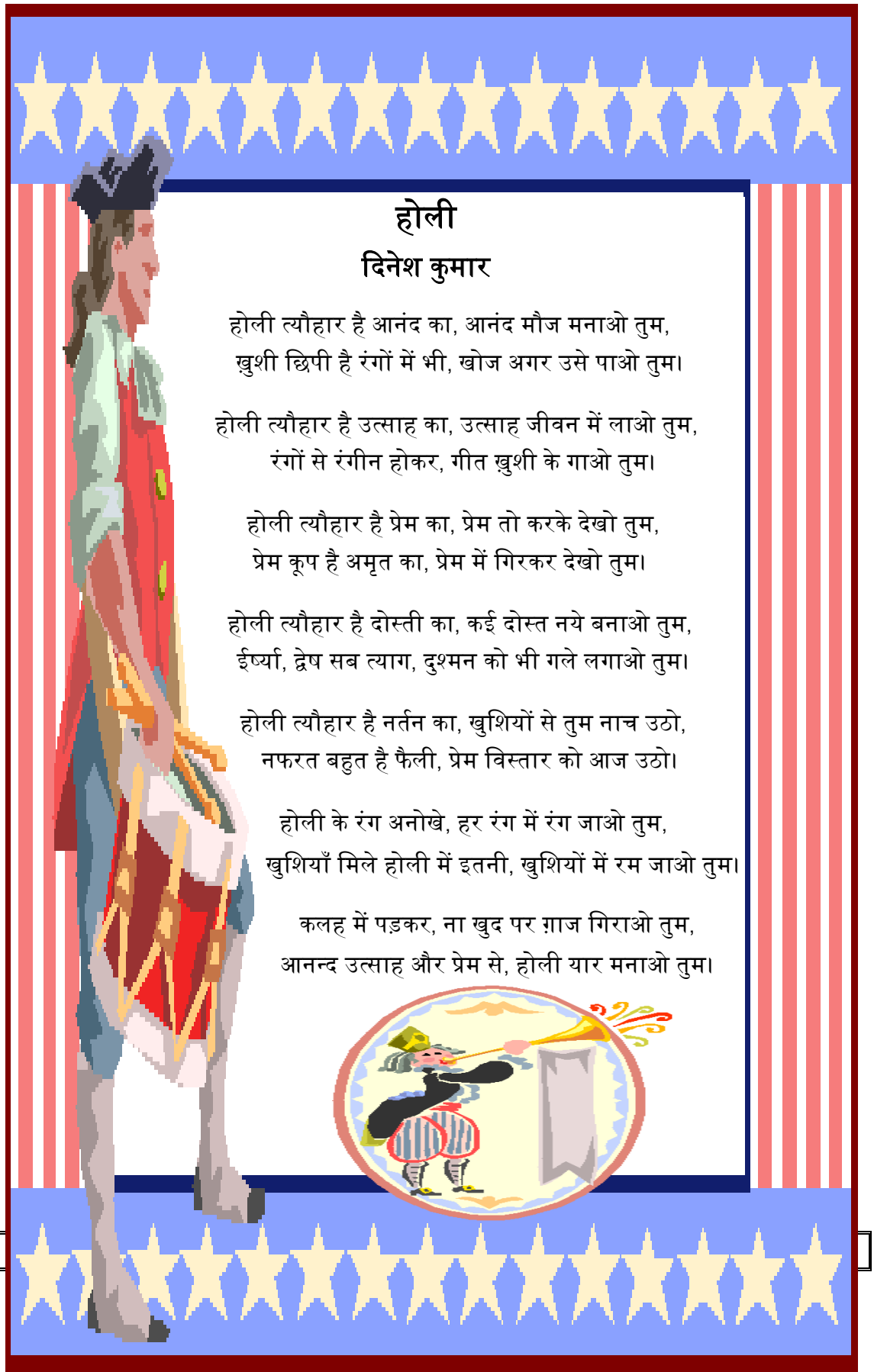

होली

दिनेश कुमार

होली त्यौहार है आनंद का, आनंद मौज मनाओ तुम,
ख़ुशी छिपी है रंगों में भी, खोज अगर उसे पाओ तुम।

होली त्यौहार है उत्साह का, उत्साह जीवन में लाओ तुम,
रंगों से रंगीन होकर, गीत ख़ुशी के गाओ तुम।

होली त्यौहार है प्रेम का, प्रेम तो करके देखो तुम,
प्रेम कूप है अमृत का, प्रेम में गिरकर देखो तुम।

होली त्यौहार है दोस्ती का, कई दोस्त नये बनाओ तुम,
ईर्ष्या, द्वेष सब त्याग, दुश्मन को भी गले लगाओ तुम।

होली त्यौहार है नर्तन का, खुशियों से तुम नाच उठो,
नफरत बहुत है फैली, प्रेम विस्तार को आज उठो।

होली के रंग अनोखे, हर रंग में रंग जाओ तुम,
खुशियाँ मिले होली में इतनी, खुशियों में रम जाओ तुम।

कलह में पड़कर, ना खुद पर ग़ाज गिराओ तुम,
आनन्द उत्साह और प्रेम से, होली यार मनाओ तुम।

अपत्नी

ममता कालिया

हम लोग अपने जूते समुद्र तट पर ही मैले कर चुके थे। जहाँ ऊँची-ऊँची सूखी रेत थी, उसमें चले थे और अब हरीश के जूतों की पॉलिश व मेरे पंजों पर लगी क्यूटेक्स धुँधली हो गयी थी। मेरी साड़ी की परतें भी इधर-उधर हो गयीं थीं। मैंने हरीश से कहा, 'उन लोगों के घर फिर कभी चलेंगे।'

'हम कह चुके हैं लेकिन!'

'मैंने आज भी वही साड़ी पहनी हुई है।' मैंने बहाना बनाया। वैसे बात सच थी। ऐसा सिर्फ लापरवाही से हुआ था। और भी कई साड़ियाँ कलफ लगी रखीं थीं पर मैं, पता नहीं कैसे यही साड़ी पहन आई थी।

'तुम्हारे कहने से पहले मैं यह समझ गया था।' हरि ने कहा। उसे हर बात का पहले से ही भान हो जाता था, इससे बात आगे बढ़ाने का कोई मौका नहीं रहता। फिर हम लोग चुप-चुप चलते रहे, इधर-उधर के लोगों व समुद्र को देखते हुए। जब हम घर में होते, बहुत बातें करते और बेफिक्री से लेटे-लेटे ट्रांजिस्टर सुनते। पर पता नहीं क्यों बाहर आते ही हम नर्वस हो जाते। हरि बार-बार अपनी जेब में झाँक कर देख लेता कि पैसे अपनी जगह पर हैं कि नहीं, और मैं बार-बार याद करती रहती कि मैंने आलमारी में ठीक से ताला लगाया कि नहीं।

हवा हमसे विपरीत बह रही थी। हरीश ने कहा, 'तुम्हारी चप्पलें कितनी गन्दी लग रही हैं। तुम इन्हें धोती क्यों नहीं?'

'कोई बात नहीं, मैं इन्हें साड़ी में छिपा लूँगी।' मैंने कहा ।

हम उन लोगों के घर के सामने आ गये थे। हमने सिर उठा कर देखा, उनके घर में रोशनी थी। उन्हें हमारा आना याद है।

उन्हें दरवाजा खोलने में पाँच मिनट लगे। हमेशा की तरह दरवाजा प्रबोध ने खोला। लीला लेटी हुई थी। उसने उठने की कोई कोशिश न करते हुए कहा, मुझे हवा तीखी लग रही थी। उसने मुझे भी साथ लेटने के लिये आमंत्रित किया। मैंने कहा, मेरा मन नहीं है। उसने बिस्तर से मेरी ओर फिल्मफेयर फेंका। मैंने लोक लिया।

हरि आँखें घुमा-घुमा कर अपने पुराने कमरे को देख रहा था। वहा यहाँ बहुत दिनों बाद आया था। मैंने आने ही नहीं दिया था। जब भी उसने यहाँ आना चाहा था, मैंने बियर मँगवा दी थी और बियर की शर्त पर मैं उसे किसी भी बात से रोक सकती थी। मुझे लगता था कि हरि इन लोगों से ज्यादा मिला तो बिगड ज़ायेगा। शादी से पहले वह यहीं रहता था। प्रबोध ने शादी के बाद हमसे कहा था कि हम सब साथ रह सकते हैं। एक पलंग पर वे और एक पर हम सो जाया करेंगे, पर मैं घबरा गई थी। एक ही कमरे में ऐसे रहना मुझे मंजूर नहीं था, चाहे उससे हमारे खर्च में काफी फर्क पडता। मैं तो दूसरों की उपस्थिति में पाँव भी ऊपर समेट कर नहीं बैठ सकती थी। मैं ने हरि से कहा था, 'मैं जल्दी नौकरी ढूँढ लूँगी, वह अलग मकान की तलाश करे।'

प्रबोध ने बताया, उसने बाथरूम में गीज़र लगवाया है। हरीश ने मेरी तरफ उत्साह से देखा, 'चलो देखें।'

हम लोग प्रबोध के पीछे पीछे बाथरूम में चले गये। उसने खोलकर बताया। फिर उसने वह पैग दिखाया जहाँ तौलिया सिर्फ खोंस देने से ही लटक जाता था। हरि बच्चों की तरह खुश हो गया।
जब हम लौट कर आये लीला उठ चुकी थी और ब्लाउज क़े बटन लगा रही थी। जल्दी जल्दी में हुक अन्दर नहीं जा रहे थे। मैं ने अपने पीछे आते हरि और प्रबोध को रोक दिया। बटन लगा कर लीला ने कहा, 'आने दो, साड़ी तो मैं उनके सामने भी पहन सकती हूँ।'

वे अन्दर आ गये।

प्रबोध बता रहा था, उसने नए दो सूट सिलवाये हैं और मखमल का क्विल्ट खरीदा है, जो लीला ने अभी निकालने नहीं दिया है। लीला को शीशे के सामने इतने इत्मीनान से साड़ी बाँधते देख कर मुझे बुरा लग रहा था। और हरि था कि प्रबोध की नई माचिस की डिबिया भी देखना चाहता था। वह देखता और खुश हो जाता जैसे प्रबोध ने यह सब उसे भेंट में दे दिया हो।

लीला हमारे सामने कुरसी पर बैठ गई। वह हमेशा पैर चौड़े करके बैठती थी, हालाँकि उसके एक भी बच्चा नहीं हुआ था। उसके चेहरे की बेफिक्री मुझे नापसंद थी। उसे बेफिक्र होने का कोई हक नहीं था। अभी तो पहली पत्नी से प्रबोध को तलाक भी नहीं मिला था। और फिर प्रबोध को दूसरी शादी की कोई जल्दी भी नहीं थी। मेरी समझ में लड़की को चिन्तित होने के लिये यह पर्याप्त कारण था।

उसे घर में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उसने कभी अपने यहाँ आने वालों से यह नहीं पूछा कि वे लोग क्या पीना चाहेंगे। वह तो बस सोफे पर पाँव चौड़े कर बैठ जाती थी।

हर बार प्रबोध ही रसोई में जाकर नौकर को हिदायत देता था। इसलिये बहुत बार जब हम चाय की आशा करते होते थे, हमारे आगे अचानक लेमन स्क्वैश आ जाता था। नौकर स्क्वैश अच्छा बनाने की गर्ज से कम पानी ज़्यादा सिरप डाल लाता था। मैं इसलिये स्क्वैश खत्म करते ही मुँह में जिन्तान की एक गोली डाल लेती थी।

प्रबोध ने मुझसे पूछा, 'कहीं एप्लाय कर रखा है?'

'नहीं' मैंने कहा ।

'ऐसे तुम्हें कभी नौकरी नहीं मिलनी। तुम भवन वालों का डिप्लोमा ले लो और लीला की तरह काम शुरु करो।'

मैं चुप रही। आगे पढने का मेरा कोई इरादा नहीं था। बल्कि मैं ने तो बी.ए. भी रो-रोकर किया है। नौकरी करना मुझे पसन्द नहीं था। वह तो मैं हरि को खुश करने के लिये कह देती थी कि उसके दफ्तर जाते ही मैं रोज 'आवश्यकता है' कॉलम ध्यान से पढ़ती हूँ और नौकरी करना मुझे थ्रिलिंग लगेगा।

फिर जो काम लीला करती थी उसके बारे में मुझे शुबहा था। उसने कभी अपने मुँह से नहीं बताया कि वह क्या करती थी। हरि के अनुसार, ज़्यादा बोलना उसकी आदत नहीं थी। पर मैं ने आज तक किसी वर्किंग गर्ल को इतना चुप नहीं देखा था।

प्रबोध ने मुझे कुरेद दिया था। मैंने भी कुरेदने की गर्ज से कहा, 'सूट क्या शादी के लिये सिलवाये हैं?'

प्रबोध बिना झेंपे बोला 'शादी में जरीदार अचकन पहनूँगा और सन एण्ड सैण्ड में दावत दूँगा जिसमें सभी फिल्मी हस्तियाँ और शहर के व्यवसायी आयेंगे। लीला उस दिन इम्पोर्टेड विग लगायेगी और रूबीज़ पहनेगी।'

लीला विग लगा कर, चौडी टाँगे करके बैठेगी - यह सोच कर मुझे हँसी आ गई। मैंने कहा, 'शादी तुम लोग क्या रिटायरमेन्ट के बाद करोगे क्या?'

लीला अब तक सुस्त हो चुकी थी। मुझे खुशी हुई। जब हम लोग आये थे उसे डनलप के बिस्तर में दुबके देख मुझे ईर्ष्या हुई थी। इतनी साधारण लडक़ी को प्रबोध ने बाँध रखा था, यह देख कर आश्चर्य होता था। उसकी साधारणता की बात मैं अकसर हरि से करती थी। हरि कहता था कि लीला प्रबोध से भी अच्छा आदमी डिजर्व करती थी। फिर हमारी लड़ाई हो जाया करती थी। मुझे प्रबोध से कुछ लेना देना नहीं था। शायद अपने नितान्त अकेले और ऊबे क्षणों में भी मैं प्रबोध को ढील न देती पर फिर भी मुझे चिढ होती थी कि उसकी पसन्द इतनी सामान्य है।

प्रबोध ने मेरी ओर ध्यान से देखा, 'तुम लोग सावधान रहते हो न अब?'

मुझे सवाल अखरा। एक बार प्रबोध के डाक्टर से मदद लेने से ही उसे यह हक महसूस हो, मैं यह नहीं चाहती थी। और हरीश था कि उसकी बात का विरोध करता ही नहीं था।

प्रबोध ने कहा, 'आजकल उस डॉक्टर ने रेट बढा दिये हैं। पिछले हफ्ते हमें डेढ हजार देना पड़ा।'

लीला ने सकुचाकर, एक मिनट के लिये घुटने आपस में जोड़ लिये।

'कैसी अजीब बात है, महीनों सावधान रहो और एक दिन के आलस से डेढ़ हज़ार रूपये निकल जायें।' प्रबोध बोला।

हरि मुस्कुरा दिया, उसने लीला से कहा, 'आप लेटिये, आपको कमजोरी महसूस हो रही होगी।'

'नहीं।' लीला ने सिर हिलाया।

मेरा मूड खराब हो गया। एक तो प्रबोध का ऐसी बात शुरु करना ही बदतमीजी थी, ऊपर से इस सन्दर्भ में हरि का लीला से सहानुभूति दिखाना तो बिलकुल नागवार था। हमारी बात और थी। हमारी शादी हो चुकी थी। बल्कि जब हमें जरूरत पड़ी थी तो मुझे सबसे पहले लीला का ध्यान आया था। मैं ने हरि से कहा था, 'चलो लीला से पूछें, उसे ऐसे ठिकाने का जरूर पता होगा।'

लीला मेरी तरफ देख रही थी, मैंने भी उसकी ओर देखते हुए कहा, 'तुम तो कहती थी, तुमने मंगलसूत्र बनाने का आर्डर दिया है।'

'हाँ, वह कबका आ गया। दिखाऊँ?' लीला आलमारी की तरफ बढ ग़ई।

प्रबोध ने कहा, 'हमने एक नया और आसान तरीका ढूँढा है, लीला जरा इन्हें वह पैकेट दिखाना...।'

मुझे अब गुस्सा आ रहा था। प्रबोध कितना अक्खड़ है - यह मुझे पता था। इसीलिये हरि को मैं इन लोगों से बचा कर रखना चाहती थी।

हरि जिज्ञासावश उसी ओर देख रहा है जहाँ लीला आलमारी में पैकेट ढूँढ रही है।

मैंने कहा, 'रहने दो मैंने देखा है।'

प्रबोध ने कहा, 'बस ध्यान देने की बात यह है कि एक भी दिन भूलना नहीं है। नहीं तो सारा कोर्स डिस्टर्ब। मैं तो शाम को जब नौकर चाय लेकर आता है तभी एक गोली ट्रे में रख देता हूँ।'

लीला आलमारी से मंगलसूत्र लेकर वापस आ गई थी, बोली - 'कभी किसी दोस्त के घर इनके साथ जाती हूँ तब पहन लेती हूँ।'

मैं ने कहा, 'रोज तो तुम पहन भी नहीं सकती ना कोई मुश्किल खडी हो सकती है।' कुछ ठहर कर मैं ने सहानुभूति से पूछा, 'अब तो वह प्रबोध को नहीं मिलती ?'

लीला ने कहा, 'नहीं मिलती।'

उसने मंगलसूत्र मेज पर रख दिया।

प्रबोध की पहली पत्नी इसी समुद्र से लगी सड़क के दूसरे मोड़ पर अपने चाचा के यहाँ रहती थी। हरि ने मुझे बताया, 'शुरु-शुरु में जब वह प्रबोध के साथ समुद्र पर घूमने जाता था, उसकी पहली पत्नी अपने चाचा के घर की बालकनी में खड़ी रहती थी और प्रबोध को देखते ही होंठ दाँतों में दबा

लेती थी। फिर बालकनी में ही दीवार से लगकर बाँहों में सिर छिपा कर रोने लगती थी। जल्दी ही उन लोगों ने उस तरफ जाना छोड़ दिया था।'

प्रबोध ने बात का आखिरी टुकड़ा शायद सुना हो क्योंकि उसने हमारी तरफ देखते हुए कहा, गोली मारो मनहूसों को! इस समय हम दुनिया के सबसे दिलचस्प विषय पर बात कर रहे हैं। क्यों हरि, तुम्हें यह तरीका पसन्द आया?'

हरि ने कहा, 'पर यह तो बहुत भुलक्कड़ है। इसे तो रात को दाँत साफ करना तक याद नहीं रहता।'

मैं कुछ आश्वस्त हुई। हरि ने बातों को ओवन से निकाल दिया था। मैं ने खुश होकर कहा, 'पता नहीं मेरी याददाश्त को शादी के बाद क्या हो गया है? अगर ये न हों तो मुझे तो चप्पल पहनना भी भूल जाये।'

हरि ने अचकचा कर मेरे पैरों की तरफ देखा। वादे के बावजूद मैं पाँव छिपाना भूल गई थी। उठते हुए मैने प्रबोध से कहा, 'हम लोग बरट्रोली जा रहे हैं, आज स्पेशल सेशन है, तुम चलोगे?'
प्रबोध ने लीला की तरफ देखा और कहा, 'नहीं अभी इसे नाचने में तकलीफ होगी।'

औरत पालने को कलेजा चाहिये

शैल चतुर्वेदी

एक दिन बात की बात में
बात बढ़ गई
हमारी घरवाली
हमसे ही अड़ गई
हमने कुछ नहीं कहा
चुपचाप सहा
कहने लगी - "आदमी हो
तो आदमी की तरह रहो
आँखे दिखाते हो
कोइ अहसान नहीं करते
जो कमाकर खिलाते हो
सभी खिलाते हैं
तुमने आदमी नहीं देखे
झूले में झूलाते हैं।।
देखते कहीं हो
और चलते कहीं हो
कई बार कहा
इधर-उधर मत ताको
बुढ़ापे की खिड़की से
जवानी को मत झाँको

कोई मुझ जैसी मिल गई
तो सब भूल जाओगे
वैसे ही फूले हो
और फूल जाओगे।।
चन्दन लगाने की उम्र में
पाउडर लगाते हो
भगवान जाने
ये कद्दू सा चेहरा किसको दिखाते हो
कोई पूछता है तो कहते हो-
"तीस का हूँ।"
उस दिन एक लड़की से कह रहे थे-
"तुम सोलह की हो
तो मैं बीस का हूँ।"
वो तो लड़की अन्धी थी
आँख वाली रहती
तो छाती का बाल नोच कर कहती
ऊपर ख़िज़ाब और नीचे सफेदी
वाह रे, बीस के शैल चतुर्वेदी।।
हमारे डैडी भी शादी-शुदा थे
मगर क्या मज़ाल
कभी हमारी मम्मी से भी
आँख मिलाई हो
मम्मी हज़ार कह लेती थीं
कभी ज़ुबान हिलाई हो।
कमाकर पाँच सौ लाते हो
और अकड़
दो हज़ार की दिखाते हो
हमारे डैडी दो-दो हज़ार
एक बैठक में हार जाते थे
मगर दूसरे ही दिन चार हज़ार
न जाने, कहाँ से मार लाते थे।।
माना कि मैं माँ हूँ
तुम भी तो बाप हो
बच्चों के ज़िम्मेदार
तुम भी हाफ़ हो

अरे, आठ-आठ हो गए
तो मेरी क्या ग़लती
गृहस्थी की गाड़ी
एक पहिये से नहीं चलती

बच्चा रोए तो मैं मनाऊँ
भूख लगे तो मैं खिलाऊँ
और तो और
दूध भी मैं पिलाऊँ
माना कि तुम नहीं पिला सकते
मगर खिला तो सकते हो
अरे बोतल से ही सही
दूध तो पिला सकते हो
मगर यहाँ तो खुद ही
मुँह से बोतल लगाए फिरते हैं
अँग्रेज़ी शराब का बूता नहीं
देशी चढ़ाए फिरते हैं

हमारे डैडी की बात और थी
बड़े-बड़े क्लबो में जाते थे
पीते थे, तो माल भी खाते थे
तुम भी चने फाँकते हो
न जाने कौन-सी पीते हो
रात भर खाँसते हो
मेरे पैर का घाव
धोने क्या बैठे
नाखून तोड़ दिया
अभी तक दर्द होता है
तुम-सा भी कोई मर्द होता है?
जब भी बाहर जाते हो
कोई ना कोई चीज़ भूल आते हो
न जाने कितने पैन, टॉर्च
और चश्मे गुमा चुके हो

अब वो ज़माना नहीं रहा
जो चार आने के साग में
कुनबा खा ले
दो रुपये का साग तो

अकेले तुम खा जाते हो
उस वक्त क्या टोकूँ
जब थके-माँदे दफ़्तर से आते हो।।
कोई तीर नहीं मारते
जो दफ़्तर जाते हो।।
रोज़ एक न एक बटन तोड़ लाते हो
मैं बटन टाँकते-टाँकते
काज़ हुई जा रही हूँ
मैं ही जानती हूँ
कि कैसे निभा रही हूँ
कहती हूँ, पैंट ढीले बनवाओ
तंग पतलून सूट नहीं करतीं
किसी से भी पूछ लो
झूठ नहीं कहती
इलैस्टिक डलवाते हो
अरे, बेल्ट क्यूँ नहीं लगाते हो
फिर पैंट का झंझट ही क्यों पालो
धोती पहनो ना,
जब चाहो खोल लो
और जब चाहो लगा लो।।
मैं कहती हूँ तो बुरा लगता है
बूढ़े हो चले
मगर संसार हरा लगता है
अब तो अक्ल से काम लो
राम का नाम लो
शर्म नहीं आती
रात-रात भर
बाहर झक मारते हो।।
औरत पालने को कलेजा चाहिये
गृहस्थी चलाना खेल नहीं
भेजा चहिये।"

साहित्य और समाज के रिश्ते

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
(कुलपति - महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय)

शिक्षा की भाषा, दैनंदिन कार्यों में प्रयोग की भाषा, सरकारी काम-काज की भाषा के रूप में हिंदी को उसका जायज गौरव दिलाने के लिए अनेक प्रबुद्ध हिंदी सेवी और हितैषी चिंतित हैं और कई तरह के प्रयास कर रहे हैं जनमत तैयार कर रहे हैं. समकालीन साहित्य की युग-चेतना पर नजर दौडाएँ तो यही दिखता है कि समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों पर प्रहार करने और विद्रूपताओं को उघारने के लिए साहित्य तत्पर है. इस काम को आगे बढाने के लिए स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, आदिवासी विमर्श जैसे अनेक विमर्शों के माध्यम से हस्तक्षेप किया जा रहा है. इन सबमें सामजिक न्याय की गुहार लगाई जा रही है ताकि अवसरों की समानता और समता समानता के मूल्यों को स्थापित किया जा सके. आज देश के कई राजनैतिक दल भी प्रकट रूप से इसी तरह के मसौदे के साथ काम कर रहे हैं. आजाद भारत में 'स्वतंत्रता' की जाँच-पड़ताल की जा रही है. साहित्य के क्षेत्र में परिवर्तनकामी और जीवंत रचनाकार यथार्थ, पीड़ा, प्रतिरोध और संत्रास को लेकर अनुभव और कल्पना के सहारे मुखर हो रहे हैं. इन सब प्रयासों में सोचने का परिप्रेक्ष्य आज बदला हुआ है. यह अस्वाभाविक भी नहीं है क्योंकि आज जिस देश और काल में हम जी रहे हैं वही बदला हुआ है. अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य और राजनीतिक समीकरण बदला हुआ है. संचार की तकनीक और मीडिया के जाल ने हमारे ऐन्द्रिक अनुभव की दुनिया का विराट फैलाव दिया है. ऐसे में जब 'दद्दा' यानी राष्ट्रकवि श्रद्धेय मैथिलीशरण गुप्त की एक सौ इकतीसवीं जन्मतिथि पड़ी तो उनके अवदान का भी स्मरण आया. इसलिए भी कि उनके सम्मुख भी एक साहित्यकार के रूप में अँग्रेजों के उपनिवेश बने हुए परतंत्र भारत की मुक्ति का प्रश्न खड़ा हुआ था. उन्हें राजनैतिक व्यवस्था की गुलामी और मानसिक गुलामी दोनों की ही काट सोचनी थी और साहित्य की भूमिका तय कर उसको इस काम में नियोजित भी करना था.

उल्लेखनीय है कि गुप्त जी का समय यानी बीसवीं सदी के आरंभिक वर्ष आज की प्रचलित खड़ी बोली हिंदी के लिए भी आरंभिक काल था. समर्थ भाषा की दृष्टि से हिंदी के लिए यह एक संक्रमण का काल था. भारतेन्दु युग में शुरुआत हो चुकी थी पर हिंदी का नया उभरता रूप अभी भी ठीक से अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सका था. सच कहें तो आज की हिंदी आकार ले रही थी या कहें रची जा रही थी. भाषा का प्रयोग पूरी तरह से रवां नहीं हो पाया था. इस नई चाल की हिंदी के महनीय शिल्पी 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने गुप्त जी को ब्रज भाषा की जगह खड़ी बोली हिंदी में काव्य-रचना की सलाह दी और इस दिशा में प्रोत्साहित किया.

गुप्त जी के मन-मस्तिष्क में देश और संस्कृति के सरोकार गूँज रहे थे. तब तक की जो कविता थी उसमें प्रायः परम्परागत विषय ही लिए जा रहे थे. गुप्त जी ने राष्ट्र को केन्द्र में लेकर काव्य के माध्यम से भारतीय समाज को संबोधित करने का बीड़ा उठाया. उनके इस प्रयास को तब और स्वीकृति मिली जब 1936 में हुए काँग्रेस के अधिवेशन में महात्मा गाँधी से उन्हें 'राष्ट्र-कवि' की संज्ञा प्राप्त हुई. एक आस्तिक वैष्णव परिवार में जन्मे और चिरगाँव की ग्रामीण पृष्ठभूमि में पले-बढे गुप्त जी का बौद्धिक आधार मुख्यतः स्वाध्याय और निजी अनुभव ही था. औपचारिक शिक्षा कम होने पर भी गुप्त जी ने

समाज, संस्कृति और भाषा के साथ एक दायित्वपूर्ण रिश्ता विकसित किया. बीसवीं सदी के आरम्भ से सदी के मध्य तक लगभग आधी सदी तक चलती उनकी विस्तृत काव्य यात्रा में उनकी लेखनी ने चालीस से अधिक काव्य कृतियाँ हिंदी जगत को दीं. इतिवृत्तात्मक और पौराणिक सूत्रों को लेकर आगे बढती उनकी काव्य-धारा सहज और सरल है. राष्ट्रवादी और मानवता की पुकार लगाती उनकी कविताएँ छंद बद्ध होने के कारण पठनीय और गेय हैं. सरल शब्द योजना और सहज प्रवाह के साथ उनकी बहुतेरी कविताएँ लोगों की जुबान पर चढ़ गई थीं. उनकी कविता संस्कृति के साथ संवाद कराती-सी लगती हैं. उन्होंने उपेक्षित चरित्रों को लिया. यशोधरा, काबा और कर्बला, जयद्रथ वध, हिडिम्बा, किसान, पञ्चवटी, नहुष, सैरंध्री, अजित, शकुंतला, शक्ति, वन वैभव आदि खंड काव्य उनके व्यापक विषय विस्तार को स्पष्ट करते हैं. साकेत और जय भारत गुप्त जी के दो महाकाव्य हैं.

संस्कृति और देश की चिंता की प्रखर अभिव्यक्ति उनकी प्रसिद्ध काव्य रचना भारत-भारती में हुई जो गाँव, शहर, हर जगह लोकप्रिय हुई. उसका पहला संस्करण 1014 में प्रकाशित हुआ था. उसकी प्रस्तावना जिसे लिखे भी एक सौ पांच साल हो गए आज भी प्रासंगिक है. गुप्त जी कहते हैं 'यह बात मानी हुई है कि भारत की पूर्व और वर्त्तमान दशा में बड़ा भारी अंतर है. अंतर न कह कर इसे वैपरीत्य कहना चाहिए. एक वह समय था कि यह देश विद्या, कला-कौशल और सभ्यता में संसार का शिरोमणि था और एक यह समय है कि इन्हीं बातों का इसमें शोचनीय अभाव हो गया है. जो आर्य जाति कभी सारे संसार को शिक्षा देती थी वही आज पद-पद पर पराया मुँह ताक रही है'!

गुप्त जी का मन देश की दशा को देख कर व्यथित हो उठता है और समाधान ढूँढने चलता है. फिर गुप्त जी स्वयं यह प्रश्न उठाते हैं कि 'क्या हमारा रोग ऐसा असाध्य हो गया है कि उसकी कोई चिकित्सा ही नहीं है?' इस प्रश्न पर मनन करते हुए गुप्त जी यह मत स्थिर कर पाठक से साझा करते हैं, 'संसार में ऐसा काम नहीं जो सचमुच उद्योग से सिद्ध न हो सके. परन्तु उद्योग के लिए उत्साह की आवश्यकता है. बिना उत्साह के उद्योग नहीं हो सकता. इसी उत्साह को उत्तेजित करने के लिए कविता एक उत्तम साधन है.' इस तरह के संकल्प के साथ गुप्त जी काव्य-रचना में प्रवृत्त होते हैं.

भारत-भारती काव्य के तीन खंड हैं अतीत, वर्तमान और भविष्यत्. बड़े विधि विधान से गुप्त जी ने भारत की व्यापक सांस्कृतिक परंपरा की विभिन्न धाराओं का वैभव, अँग्रेजों के समय हुए उसके पराभव के विभिन्न आयाम और जो भी भविष्य में संभव है उसके लिए आह्वान को रेखांकित किया है. उनकी खड़ी बोली हिंदी के प्रसार की दृष्टि से प्रस्थान विन्दु सरीखी तो है ही उनकी प्रभावोत्पाक शैली में उठाये गए सवाल आज भी मन को मथ रहे हैं : हम कौन थे क्या हो गए और क्या होंगे अभी? हमें आज फिर इन प्रश्नों पर सोचना विचारना होगा और इसी बहाने समाज को साहित्य से जोड़ना होगा. शायद ये सवाल हर पीढ़ी को अपने-अपने देश-काल में सोचना चाहिए.

भारत माता का मंदिर यह

मैथिली शरण गुप्त

भारत माता का मंदिर यह
समता का संवाद जहाँ,
सबका शिव कल्याण यहाँ है
पावें सभी प्रसाद यहाँ।

जाति-धर्म या संप्रदाय का,
नहीं भेद-व्यवधान यहाँ,
सबका स्वागत, सबका आदर
सबका सम सम्मान यहाँ।
राम, रहीम, बुद्ध, ईसा का
सुलभ एक सा ध्यान यहाँ,
भिन्न-भिन्न भव संस्कृतियों के
गुण गौरव का ज्ञान यहाँ।

नहीं चाहिए बुद्धि बैर की
भला प्रेम का उन्माद यहाँ
सबका शिव कल्याण यहाँ है
पावें सभी प्रसाद यहाँ।

सब तीर्थों का एक तीर्थ यह
हृदय पवित्र बना लें हम
आओ यहाँ अजातशत्रु बन,
सबको मित्र बना लें हम।

रेखाएँ प्रस्तुत हैं, अपने
मन के चित्र बना लें हम।
सौ-सौ आदर्शों को लेकर
एक चरित्र बना लें हम।

बैठो माता के आँगन में
नाता भाई-बहन का
समझे उसकी प्रसव वेदना
वही लाल है माई का
एक साथ मिल-बाँट लो
अपना हर्ष विषाद यहाँ
सबका शिव कल्याण यहाँ है
पावें सभी प्रसाद यहाँ।

मिला सेव्य का हमें पुजारी
सकाल काम उस न्यायी का
मुक्ति लाभ कर्तव्य यहाँ है
एक एक अनुयायी का
कोटि-कोटि कंठों से मिलकर
उठे एक जयनाद यहाँ
सबका शिव कल्याण यहाँ है
पावें सभी प्रसाद यहाँ।

होली

डॉ स्नेह ठाकर

होली की है ये कहानी
सदियों से चली आ रही बात पुरानी
हिरण्यकशिपु था राक्षस-पिता आततायी
और उसका बालक गाता प्रभु की प्रभुताई।

हिरण्यकशिपु को ये रास न आई
पुत्र की भक्ति उसे न भाई
समझ बैठा वह ईश्वर स्वयं को ही
ऐसा था वो अति मूर्ख, घमंडी।

बहन ने भी भाई का साथ दिया
उसका भी अहंकार न छूट सका
पिता और बुआ ने ऐसा जाल रचा
जीवित ही प्रह्लाद का अग्निदाह किया।

जिस होलिका को था घमंड इतना
अपने न जल सकने की सामर्थ्य का
उसी का दारुण दहन हुआ
और उसी अग्नि की गोद में बैठा
प्रह्लाद मुस्कुराता रहा।

नारायण तेरा नाम है बड़ा
जो ले वही भवसागर तरा
प्रह्लाद ने तुझे ही याद किया
अग्नि में बैठ बस तेरा ही नाम लिया।

होलिका के लिए थी वह दहकती आग
और प्रह्लाद के लिए माँ का शीतल अंक
हो गये इस बात को कई साल
पर हम आज भी मनाते हैं धूमधाम से यह पर्व।

बुराई पर अच्छाई की विजय
रहती है सत्य हर युग में
अतः मनाते हैं हम होलिका-दहन
हर वर्ष इस तथ्य की पुष्टि में।

और फिर दूसरे दिन
हर विषम भाव भुला
खेलते हैं सतरंगी होली
नाचते, गाते, झूमते, सबको गले लगा।

एक थी गौरा

अमरकांत

लंबे कद और डबलंग चेहरे वाले चाचा रामशरण के लाख विरोध के बावजूद आशू का विवाह वहीं हुआ। उन्होंने तो बहुत पहले ही ऐलान कर दिया था कि 'लड़की बड़ी बेहया है।'

आशू एक व्यवहार-कुशल आदर्शवादी नौजवान है, जिस पर मार्क्स और गाँधी दोनों का गहरा प्रभाव है। वह स्वभाव से शर्मीला या संकोची भी है। वह संकुचित विशेष रूप से इसलिए भी था कि सुहागरात का वह कक्ष फिल्मों में दिखाए जाने वाले दृश्य के विपरीत एक छोटी अँधेरी कोठरी में था, जिसमें एक मामूली जंगला था और मच्छरों की भन-भन के बीच मोटे-मोटे चूहे दौड़ लगा रहे थे।

लेकिन आशू की समस्या इस तरह दूर हुई कि उसके अंदर पहुँचते ही गौरा नाम की दुल्हन ने घूँघट उठा कर कहा, लीजिए मैं आ गई। आप जहाँ रहते, मैं वहीं पहुँच जाती। अगर आप कॉलेज में पढ़ते होते और मैं भी उसी कॉलेज में पढ़ती होती तो मैं जरूर आपके प्रेम बंधन में बँध गई होती। आप अगर इंग्लैंड में पैदा होते तो मैं भी वहाँ जरूर किसी-न-किसी तरह पहुँच जाती। मेरा जन्म तो आपके लिए ही हुआ है।

कोई चूहा कहीं से कूदा, खड़-खड़ की अवाज हुई और उसके कथन में भी व्यवधान पड़ा। वह फिर बोलने लगी, 'मेरे बाबूजी बड़े सीधे-सादे हैं। इतने सीधे हैं कि भूख लगने पर भी किसी से खाना न माँगें। इसलिए जब वह खाने के पीढ़े पर बैठते हैं तो अम्मा कहीं भी हों, दौड़ कर चली आती हैं। वह जिद करके उन्हें ठूँस-ठूँस कर खिलाती हैं, उनकी कमर की धोती ढीली कर देती हैं ताकि वह पूरी खुराक ले सकें। हमारे बाबूजी ने बहुत सहा है। लेकिन हमारी अम्मा भी बड़ी हिम्मती हैं।' वह चुप हो गई। उसे संदेह हुआ था कि आशू उसकी बात ध्यान से नहीं सुन रहा है। पर ऐसी बात नहीं थी। वस्तुतः आशू को समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कहे। फिर उसकी बातें भी दिलचस्प थीं।

उसका कथन जारी था, बाबूजी असिस्टेंट स्टेशन मास्टर थे। बड़े बाबू दिन में ड्यूटी करते थे और हमारे बाबूजी रात में। एक बार बाबूजी को नींद आ गई। प्लेटफार्म पर गाड़ी आकर खड़ी हो गई। गाड़ी की लगातार सीटी से बाबूजी की नींद खुली। गार्ड अँग्रेज था, बाबूजी ने बहुत माफी माँगी, पर वह नहीं माना। बाबू जी डिसमिस कर दिए गए। नौकरी छूट गई, गाँव में आ गए। खेती-बारी बहुत कम होने से दिक्कत होने लगी। बाबूजी ने अपने छोटे भाई के पास लिखा मदद के लिए तो उन्होंने कुछ फटे कपड़े बच्चों के लिए भेज दिए। यह व्यवहार देखकर बाबूजी रोने लगे।

इतना कहकर वह अँधेरे में देखने लगी। आशू भी उसे आँखें फाड़कर देख रहा था। यह क्या कह रही है? और क्यों? क्या यह दुख-कष्ट बयान करने का मौका है! न शर्म और संकोच, लगातार बोले जा रही है!

उसने आगे कहना शुरू किया, 'लेकिन मैंने बताया था न, मेरी माँ बड़ी हिम्मती थी। एक दिन वह भैया लोगों को लेकर सबसे बड़े अफसर के यहाँ पहुँच गई। भैया लोग छोटे थे। वह उस समय गई जब अफसर की अँग्रेज औरत बाहर बरामदे में बैठी थी। अम्मा का विश्वास था कि औरत ही औरत का दर्द समझ सकती है। अफसर की औरत मना करती रही, कुत्ते भी दौड़ाए पर अम्मा नहीं मानी और दुखड़ा सुनाया। अँग्रेज अफसर की पत्नी ने ध्यान से सब कुछ सुना। फिर बोली, 'जाओ हो जाएगा।' अम्मा गाँव चली आई। कुछ दिन बाद बाबूजी को नौकरी पर बहाल होने का तार भी मिल गय। तार मिलते

ही बाबूजी नौकरी ज्वाइन करने के लिए चल पड़े। पानी पीट रहा था पर वह नहीं माने, बारिश में भीगते ही स्टेशन के लिए चल पड़े।

उनकी रुहेलखंड रेलवे में नियुक्ति हो गई। बनबसा, बरेली, हलद्वानी, काठगोदाम, लालकुआँ। हम लोग कई बार पहाड़ों पर पैदल ही चढ़कर गए हैं। भीमताल की चढ़ाई, राजा झींद की कोठी। उधर के स्टेशन क्वार्टरों की ऊँची-ऊँची दीवारें। शेर-बाघ, जंगली जानवरों का हमेशा खतरा रहता है। एक बार हम लोग जाड़े में आग ताप रहे थे तो एक बाघ ने हमला किया, लेकिन आग की वजह से हम लोग बाल-बाल बच गए। वह इस पार से उस पार कूद कर भाग गया।'

वह रुक कर आशू को देखने लगी। फिर बोली, 'मैं तभी से बोले जा रही हूँ....आप भी कुछ कहिए...।'

आशू सकपका गया फिर धीमे से संकोचपूर्वक बोला, 'मैं... मेरे पास कहने को कुछ खास नहीं है। हाँ, मैं लेखक बनना चाहता हूँ....मैं लोगों के दुख-दर्द की कहानी लिखना चाहता हूँ, लेकिन मेरे अंदर आत्मविश्वास की कमी है। पता नहीं, मैं लिख पाऊँगा कि नहीं...।'

'क्यों नहीं लिख पाएँगे? जरूर लिखेंगे। मेरी वजह से आपके काम में कोई रुकावट न होगी। मुझसे जो भी मदद होगी, हो सकेगी, मैं जरूर दूँगी....आप निश्चिंत रहिए। मेरे भैया ने कहा है कि 'तुम्हें अपने पति की हर मदद करनी होगी....जिससे वह अपने रास्ते पर आगे बढ़ सकें...। मुझे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए....आप जो खिलाएँगे और जो पहनाएँगे, वह मेरे लिए स्वादिष्ट और मूल्यवान होगा। आप बेफिक्र होकर लिखिए, पढ़िए....आपको निरंतर मेरा सहयोग प्राप्त होगा...।'

उसकी आँखें भारी हो रही थीं और अचानक वह नींद के आगोश में चली गई।

आशू कुछ देर तक उसके मुखमंडल को देखता रहा। वह सोचने लगा कि गौरा नाम की इस लड़की के साथ उसका जीवन कैसे बीतेगा....लेकिन लाख कोशिश करने पर भी वह सोच नहीं पाया। वह अँधेरे में देखने लगा।

हजारों बार दागी हैं
स्त्री की देह पर जिससे
उसका समूचा स्त्री तत्व
और रोम–रोम
लहू लुहान है
फिर आज तुम
कौन से और कैसे नये कानून बनाकर
रोकना चाहते हो
इस भयावह रक्त रंजित दमन को ?
जब तक कि नही होगा
कोई संस्कृतिक बदलाव !
जब तक कि
ध्वस्त नही होगा
वह अधार जहाँ से
स्त्री दमन की शुरुआत हुई।"

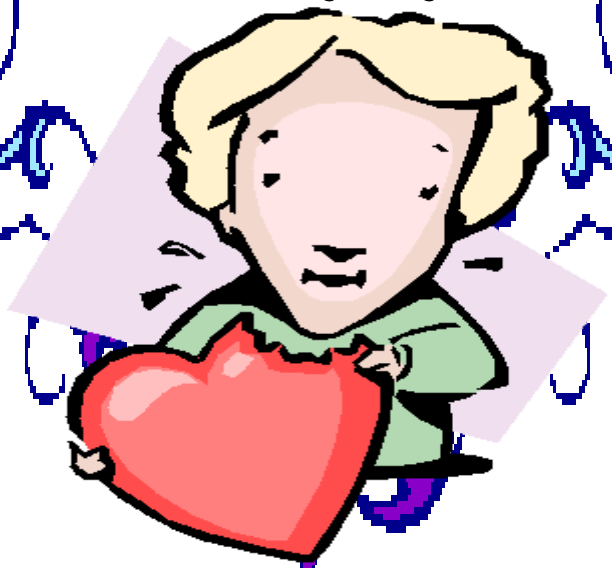

विलुप्त होती भाषाएँ और हिन्दी

प्रो. विनोद कुमार मिश्र
(महासचिव विश्व हिन्दी सचिवालय)

धरती पर आज भी हज़ारों भाषाओं की जीवन्त उपस्थिति एक ओर आशावादी स्वर का संचार करती है तो दूसरी ओर उनमें से आधे से अधिक भाषाओं की 'अकाल मृत्यु' की भविष्यवाणी चिंता का कारण. ज़ाहिर है, आरोप भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण के सर मढ़ देने के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प नहीं. हमारी सभ्यता एवं संस्कृति पर भूमंडलीकरण के सिर्फ़ नकारात्मक प्रभावों पर ही बहस क्यों? उसके सकारात्मक पहलू पर भी चर्चा लाज़मी है. बाज़ार और प्रतिस्पर्धा के परिणाम स्वरूप मुक्त अंकीय तकनीकी (डिजिटल टेक्नालजी) के द्वारा वैश्विक स्तर पर विलुप्त होती भाषाओं के संरक्षण की दिशा के प्रयास किए जा सकते हैं तथा अत्यंत अविकसित इलाक़ों से भी भाषा समुदायों के बीच पहुँचकर उन भाषाओं की पूँजी को अंकीय (डिजिटल) तकनीकी के ज़रिए 'ऑडिओ' के रूप में सुरक्षित किया जा सकता है. यद्यपि इस प्रयास के द्वारा किसी संस्कृति एवं सभ्यता को बचाए रखने का शत-प्रति-शत दावा भी नहीं किया जा सकता किन्तु उन भाषा समुदायों के बीच जो कुछ भी है उसे नष्ट होने से बचाया जा सकता है तथा एक रचनात्मक चुनौती का संदेश भी प्रसारित किया जा सकता है. भाषा विलुप्ति को सोशल नेटवर्किंग के ज़रिए आपसी संवाद के नए गवाक्ष खोलकर भी बचाने की प्रेरणा दी जा सकती है. भाषा विलुप्ति आँकड़ो की भी वैज्ञानिक पड़ताल आवश्यक है, विषेशरूप से भारत में जहाँ बहुभाषिकता व विश्लेषण की कारगर प्रक्रिया के अभाव के चलते उपलब्ध आँकड़े अविश्वसनीय लगते हैं. यूनेस्को के अनुसार भारत की विलुप्त भाषाओं व बोलियों की सूची सर्वाधिक है. यह चिंता का विषय है. भारत में हिन्दी के प्रयोक्ताओं के आँकड़े भी बहुभाषिकता के चलते सटीक एवं प्रामाणिक नहीं है किन्तु पिछले दशकों के बदले हुए परिदृश्य में हिन्दी लिखने-पढ़ने एवं बोलने वालों की संख्या में गुणात्मक वृद्धि दर्ज की गई है, जो सुखद लक्षण है. वैश्विक स्तर पर किए जा रहे आकलन भी हिन्दी के पक्ष में जा रहे हैं. संख्या बल के कारण हिन्दी का बाज़ार संसार में व्यापकता लिए हुए है तथा व्यावसायिकता की प्रतिस्पर्धा में हिन्दी एक बहुत बड़े बाज़ार का हिस्सा बन चुकी है. हिन्दी ने अपने पारम्परिक निर्मोक को उतार कर आज के अनुकूल स्वयं को सक्षम सिद्ध किया है किन्तु आने वाले दिनों में व्यावसायिक मानदण्डों पर खरी उतरने के लिए उसे अपने संरचनात्मक ढाँचे को और लचीला बनाना होगा तभी वह विश्व बाज़ार की चुनौतियों का रचनत्मक मुक़ाबला करते हुए लंबी यात्रा तय कर सकेगी. बाज़ार में कम से कम भाषाओं की उपस्थिति सुखद मानी जाती है. इतना ही नहीं शब्दों की वैकल्पित व्यवस्था भी जितनी कम होगी बाज़ार का उतना ही भला होगा. इसका एक दुष्परिणाम यह होगा कि शब्द भण्डार एवं पर्यायवाची शब्द लुप्त हो जाएँगे. हाँ! बाज़ार के अनुरूप नए शब्द जुड़ेंगे, नई व्यावसायिक शब्दावलियों का निर्माण तो होगा किन्तु बाज़ार के चलते भाषा को सामाजिक एवं सांस्कृतिक झंझट से जूझना होगा.

इस प्रकार हिन्दी को बाज़ार की निर्भरता के साथ कम्प्यूटर की तकनीकी अनुप्रयोग से समृद्ध कर विश्व की अन्य सक्षम भाषाओं के समानांतर लाना होगा. भाषा प्रौद्दोगिकी के इस अस्त्र का सांस्कृतिक व सामाजिक भाषा रूपों को संरक्षित करने की दिशा में सार्थक उपयोग करना होगा. यद्यपि हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाएँ कम्प्यूटर अनुप्रयोग के रास्ते आने वाली लगभग समस्त बाधाओं को पार कर चुकी हैं.

उच्च तकनीक से सुसंपन्न सॉफ़्टवेयर जैसे युनिकोड, मशीनी अनुवाद, फ़ॉन्ट्स, ग्राफ़िक्स पेज़, इंटरफ़ेस ओ. सी. आर., ऑफिस सूट, टेक्स्ट टू स्पीच, सर्च इंजिन, ट्रांस्लेटेड सर्च लिप्यांतरण, वर्तनी शोधन, ब्राउज़र व ऑपरेटिंग सिस्टम तथा सोशल नेटवर्किंग में भाषा चुनने की सहूलियत आसानी से उपलब्ध है. किन्तु दु:ख इस बात का है कि समस्त संसाधनों की उपलब्धता के बाद भी लोग हिन्दी के प्रयोग के प्रति उदासीन हैं. ऐसी सर्वसुलभ, सुबोध, सुग्राह्य तकनीकी को उपयोग में लाया जाना हिन्दी के हित में है. व्यवसाय एवं बाज़ार की शक्तियों को चुनौती देने के लिए हिन्दी को वह सब कुछ करना होगा जिससे विश्व स्तर की स्पर्धा में अपनी मज़बूत स्थिति की दावेदारी पेश कर सके तथा पूरी कुशलता एवं साहसिकता के साथ बाज़ारवाद से उपजी विसंगतियों को बाज़ार के हथियार से ही परास्त कर विजेता बनने का उपक्रम कर सके. सदियों से दबाव में जीने की आदी हो चुकी हिन्दी सुबह के सुखद स्वप्न की तरह सच में तब्दील हो सके.

एक विलक्षण अनुभूति

डॉ. दीप्ति गुप्ता

सृष्टि नजर आ रही अनोखी-अनूठी
निरभ्र, स्वच्छ, उजला आकाश
इच्छित, आराधित पूजित, प्रार्थित
पूर्ण जीवन की अभिलाष
सूर्य समाया नयनों में आज....!
पुष्प, पल्लव, झरता निर्झर,
पुलकित करता मन को आज
मंद-मंद, सुगन्ध बयार कहता
जीवन परिवर्तित आज
सूर्य समाया नयनों में आज....!
कल-कल करता सरिता का जल
कितना चंचल, कितना शीतल
धवल कौमुदी कर सम्मोहित
चहुँ दिशि रचती एक इन्द्रजाल
सूर्य समाया नयनों में आज....!

एक कामना मन में आती
होए भविष्य वर्तमान का साथी
शाश्वत, मधुर, मदिर आभास
पतझड़ बना बसन्त बहार
सूर्य समाया नयनों में आज....!
तमापूरित, मलिन, अशुचितम
कण- कण लघु जीवन के क्षण
सहसा बने नवल उल्लास
हुआ इन्द्रधनुष सुन्दर साकार
सूर्य समाया नयनों में आज....!
विधि ने रचा स्वर्ग धरती पर
कितना सुन्दर, कितना अभिनव
कितना सुन्दर, कितना अभिनव
सार्थक है - 'तत् त्वमसि' आज
सूर्य समाया नयनों में आज....!
आँख मूँद देखा मैंने
अन्तरतम में मधुर उजास
सत्य, शिव, सुन्दर का बन्धन
धोता कलुष, मिटा अवसाद
सूर्य समाया नयनों में आज....!
नहीं चकित होऊँगी यदि,
कहे इसे कोई सपना
सपना ही सही, लेकिन
है तो मेरा अपना.....
वृक्षों से झड़ते पुहुप लाज
सूर्य समाया नयनों में आज....!

सुभाषितसाहस्त्री

पद्मभूषण प्रो. सत्यव्रत शास्त्री

अकार्पण्य - स्तोकादपि प्रदातव्यमदीनेनान्तरात्मना ।
अहन्यहनि यत्किञ्चिदकार्पण्यं तदुच्यते ।। - भविष्यपुराण, १.२.१६३
प्रतिदिन दैन्यरहित मन से थोड़े से भी कुछ-न-कुछ देना चाहिए। इसे अकार्पण्य कहा जाता है।

अकीर्ति - नास्त्यकीर्तिसमो मृत्यु: । - बृहन्नारदीयपुराण, ६.५४
अपयश के समान और कोई मृत्यु नहीं है।

अकेला - क: कस्य पुरुषो बन्धु: किमाप्यं कस्य केनचित् ।
यदेको जायते जन्तुरेक एव विनश्यति ।। - श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, २.१०८.३
कौन किसका बन्धु है किसे क्या मिलता है? जीव अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मर (नष्ट हो) जाता है।

अगोचर - चामीकरस्य सौरभ्यमम्लानिर्मालतीस्त्रजाम् ।
श्रोतुर्निर्मत्सरत्वं च निर्माणागोचरं विधे: ।। - श्रीकण्ठचरित, २.५
सोने में सुगन्ध, मालती पुष्पों की मालाओं का न मुर्झाना और श्रोताओं का ईर्ष्यालु न होना, विधाता के निर्माण के परे हैं।

अग्रणी - नागणस्याग्रतो गच्छेत्सिद्धे कार्ये समं फलम् ।
यदि कार्यविपत्ति: स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते ।। - हितोपदेश, १.२९
जन-समुदाय का अगुआ बन कर न चले, कार्य सिद्ध हुआ तो सब बराबर-बराबर के फल के हिस्सेदार होंगे; यदि काम बिगड़ गया तो मार अगुआ पर पड़ेगी।

अङ्गीकृतपरिपालन - अद्यापि नोज्झति हर: किल कालकूटं
कूर्मो बिभर्ति धरणीं खलु चात्मपृष्ठे ।
अम्भोनिधिर्वहति दु:सहवाडवाग्नि-
मङ्गीकृतं सुकृतिन: परिपालयन्ति ।। - शुकसप्तति, पृ.४
आज भी शिव विष को अपने से अलग नहीं करते हैं, नि:सन्देह आज भी कूर्म पृथिवी को अपनी पीठ पर धारण किये हुए हैं, समुद्र असह्य वाडवाग्नि को आज भी अपने में लिये हुए है, पुण्यात्मा जिसे (एक बार) अंगीकार कर लेते हैं (अपना लेते हैं) उसे निभाते हैं।

अति - अति दानाद् बलिर्बद्धो नष्टो मानात्सुयोधन: ।
विनष्टो रावणो लौल्याद् अति सर्वत्र वर्जयेत् ।। - उद्भट श्लोक
पाठान्तर - अतिरूपाद्धता सीता
अत्यधिक दान से बलि बन्धन में पड़ा, अति दर्प के कारण सु (दुर्) योधन का विनाश हुआ। अति चञ्चलता के कारण रावण मारा गया। (पाठान्तर-रूपातिशय के कारण सीता का हरण हुआ)। अत: अति का सर्वत्र परिहार करें।
अति सर्वनाशहेतुर्हत्योऽत्यन्तं विवर्जयेत् । - शुक्रनीति, ३.२२०
अति सर्वनाश का कारण है। इसलिए (व्यक्ति) अति का सर्वथा परिहार करे।

अतिस्नेह: पापशङ्की । - अभिज्ञानशाकुन्तल, अङ्क ४, (१९वें पद्य से आगे)

अति स्नेह के कारण अनिष्ट की आशंका होने लगती है।

अतिस्नेहपरिष्वङ्गाद्वर्तिरार्द्रापि दह्यते । - श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, ४.११.११५

यदि स्नेह (= तेल, चिकनाई) अधिक हो तो उसमें डूबी गीली बत्ती भी जलने लगती है।

अधम - धिक् तस्य जन्म य: पित्रा लोके विज्ञायते नर: ।

यत् पुत्रात् ख्यातिमभ्येति तस्य जन्म सुजन्मन: ।। - मार्कण्डेयपुराण, ९.१०१

उस मनुष्य के जन्म को धिक्कार है जो संसार में पिता के कारण (नाम से) जाना जाता है। जन्म तो उस सुजन्मा का है जिसे पुत्र के कारण ख्याति मिलती है।

अनर्थ - यौवनं धनसम्पत्ति: प्रभुत्वमविवेकिता ।

एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ।। - हितोपदेश, प्र.४

यौवन, धन-सम्पत्ति, अधिकार और विवेकहीनता - इनमें से यदि एक भी हो तो अनर्थकारी होता है, जहाँ चारों हों उस का तो कहना ही क्या?

अनवसर - प्रत्युपस्थितकालस्य सुखस्य परिवर्जनम् ।

अनागतसुखाशा च नैव बुद्धिमतां नय: ।। - महाभारत, शांतिपर्व, १४०.३६

उपस्थित (= प्राप्त) सुख का परित्याग और भविष्य के सुख की आशा बुद्धिमानों की नीति नहीं है।

अनुरूपता - तप्तं तप्तेन योज्यते । - हरिवंशपुराण, १४.११

एक गरम चीज़ दूसरी गरम चीज़ के साथ जोड़ी जाती है।

अनुराग - कुलं वृत्तं श्रुतं शौर्यं सर्वमेतन्न गण्यते ।

दुर्वृत्ते वा सुवृत्ते वा जनो दातरि रज्यते ।। - कामन्दकीय नीतिसार, ५.६१

कुल, चरित्र, ज्ञान, शौर्य - इन सब के बारे में नहीं सोचा जाता। जो देता है लोग उसके प्रति अनुरक्त हो जाते हैं चाहे वह सच्चरित्र हो या दुश्चरित्र।

अनुशासन - पित्रा पुत्रो वय:स्थोपि सततं वाच्य एव तु ।

यथा स्याद् गुणसंयुक्त: प्राप्नुयाच्च महद् यश: ।।

पुत्र चाहे वयस्क भी हो गया हो तो भी पिता को चाहिए कि वह कहता (= समझाता) ही रहे जिससे वह गुणी बने और अधिक यश प्राप्त करे।

अनृत - उक्त्वानृतं भवेद्यत्र प्राणिनां प्राणरक्षणम् ।

अनृतं तत्र सत्यं स्यात्सत्यमप्यनृतं भवेत् ।। - पद्मपुराण (सृष्टि खण्ड), १८.३९२

झूठ बोलने से जहाँ प्राणियों की प्राण-रक्षा हो सकती हो वहाँ झूठ भी सच होगा और सच भी झूठ।

अनौचित्य - अक्रमेणानुपायेन कर्मारम्भो न सिध्यति । - तन्त्रोपाख्यान, पृ.२६

बिना क्रम के और बिना युक्ति के प्रारम्भ किया गया कर्म सफल नहीं होता।

अन्त - सर्वे क्षयान्ता निचया: पतनान्ता: समुच्छ्रया: ।

संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ।। - श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, २.१०५.१६

सभी संग्रहों का अन्त विनाश में होता है, उन्नतियों का पतनों (= अवनतियों) में, संयोगों का वियोग में। जीवन का अन्त मृत्यु है।

अपकार - यो यं पराकरणाय सृजत्युपायं

तेनैव तस्य नियमेन भवेद्विनाश: ।

धूमं प्रसौति नयनान्ध्यकरं यमग्नि-
भूत्वाऽम्बुद: स शमयेत् सलिलैस्तमेव ।। - राजतरङ्गिणी, ४.१२५

जो दूसरों का अपकार करने के लिए (= हानि पहुँचाने के लिए) उपाय करता (= चाल चलता) है, निश्चय ही उसका उसी से विनाश होता है। आँखों को अंधा करने वाले जिस धुएँ को अग्नि उत्पन्न करती है, वही बादल बन जलधारा से उसे शांत करता है।

अपात्र-दान - दानपात्रमतिक्रम्य यदपात्रे प्रदीयते ।
तद्दत्तं गामतिक्रम्य गर्दभस्य गवाह्निकम् ।। - स्कन्दपुराण (मा.कौ. ५.११)

दान के योग्य व्यक्ति को छोड़ कर जो अयोग्य को दिया जाता है वह दान गाय को छोड़ कर गधे को देने के बराबर है।

अपूज्य-पूजन - अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते ।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम् ।।

जिनका आदर नहीं होना चाहिए उनका जहाँ आदर होता है और जिसका आदर होना चाहिए उसका आदर होता नहीं वहाँ तीन चीज़ें होने लगती हैं - अकाल, मृत्यु और भय।

अभिमान - जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्यु: प्राणान् धर्मचर्यामसूया ।
क्रोध: श्रियं शीलमनार्यसेवा ह्रियं काम: सर्वमेवाभिमान: ।। -महाभारत, उद्योगपर्व, ३५.५०

वृद्धावस्था रूप का, आशा धैर्य का, मृत्यु प्राणों का, ईर्ष्या धर्माचरण का, क्रोध लक्ष्मी का, अनार्य (नीच) लोगों की सेवा शील का, काम लज्जा का तथा अभिमान सभी कुछ का हरण कर लेता है।

अभिमानी - य: स्तब्धो गुरुणा साकमन्यस्य नमनं कुत: ।
न छायायै न लाभाय मानी कन्थेरवन्नृणाम् ।। - हिंगुलप्रकरण, ८.३

जो गुरु के साथ ही अहंकारी है वह दूसरों के आगे कैसे झुक सकता है? मानी मनुष्य कन्थेर वृक्ष की तरह लोगों को न छाया दे सकता है और न उन्हें लाभ पहुँचा सकता है।

अर्थाधिकारी - यथा ह्यनास्वादयितुं न शक्यं
जिह्वातलस्थं मधु वा विषं वा ।
अर्थस्तथा ह्यर्थचरेण राज्ञ:
स्वल्पोऽप्यनास्वादयितुं न शक्य: ।। - अर्थशास्त्र, २.१०.३६

जिस प्रकार जिह्वा पर रखा हुआ मधु अथवा विष चखा न जाए यह सम्भव नहीं, इसी प्रकार राजा का वित्तीय कार्यों में नियुक्त अधिकारी उसका थोड़ा सा भी स्वाद न ले यह सम्भव नहीं है।

अयाचक - मान्य: कुलीन: कुलजात्कलावान्
विद्वान कलाज्ञाद् विदुष: सुशील: ।
धनी सुशीलाद्धनिनोऽपि दाता
दातुर्जिता कीर्तिरयाचकेन ।। - चतुर्वर्गसङ्ग्रह, १.२६

कुलीन व्यक्ति माननीय होता है, कलाकार कुलीन से भी अधिक माननीय होता है। कलाकार से भी विद्वान, उससे भी अधिक सुशील, उससे भी अधिक धनी और उससे भी अधिक दानी पूजनीय होता है। पर जिस व्यक्ति ने कभी याचना नहीं की, उसने दानी की कीर्ति को भी जीत लिया है।

भारत की भाषायी गुलामी

डॉ. वेदप्रताप वैदिक

स्वतंत्र भारत में भारतीय भाषाओं की कितनी दुर्दशा है ? इस दुर्दशा को देखते हुए कौन कह सकता है कि भारत वास्तव में स्वतंत्र है ? 'पीपल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' नामक संस्था ने कई शोधकर्ताओं को लगाकर भारत की भाषाओं की दशा का सूक्ष्म अध्ययन करवाया है। कल इसके ११ खंड प्रकाशित हुए हैं। इस अवसर पर वक्ताओं ने दो महत्वपूर्ण बातें कहीं। एक तो यह कि पिछले ५० वर्षों में भारत की २५० भाषाएँ लुप्त हो गई हैं, क्योंकि इन भाषाओं को बोलने वाले आदिवासी बच्चों को सिर्फ देश की २२ सरकारी भाषाओं में ही पढ़ाया जाता है। उनकी भाषाएँ सिर्फ घरों में ही बोली जाती हैं। ज्यों ही लोग अपने घरों से दूर होते हैं या बुजुर्गों का साया उन पर से उठ जाता है तो ये भाषाएँ, जिन्हें हम बोलियाँ कहते हैं, उनका नामो-निशान तक मिट जाता है। इनके मिटने से उस संस्कृति के भी मिटने का डर पैदा हो जाता है, जिसने इस भाषा को बनाया है। इस समय देश में ऐसी ७८० भाषाएँ बची हुई हैं। इनकी रक्षा जरुरी है।

अपनी भाषाओं की उपेक्षा का दूसरा दुष्परिणाम यह है कि हम अपनी भाषाओं के माध्यम से अनुसंधान नहीं करते। भारतीय भाषाओं में ज्ञान-विज्ञान का खजाना उपलब्ध है लेकिन हम लोग उसकी तरफ से बेखबर हैं। हम प्लेटो, सात्र् और चोम्सकी के बारे में तो खूब जानते हैं लेकिन हमें पाणिनी, चरक, कौटिल्य, भर्तृहरि और लीलावती के बारे में कुछ पता नहीं। हमारे ज्ञानार्जन के तरीके अभी तक वही हैं, जो गुलामी के दिनों में थे। इस गुलामी को १९६५-६६ में सबसे पहले मैंने चुनौती दी थी। ५०-५२ साल पहले मैंने दिल्ली के 'इंडियन स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज़' में माँग की थी कि मुझे अपने पीएच.डी. का शोधग्रंथ हिन्दी (मेरी मातृभाषा) में लिखने दिया जाए। अँग्रेजी तो मैं जानता ही था, मैंने फारसी, रुसी और जर्मन भी सीखी है। प्रथम श्रेणी के छात्र होने के बावजूद मुझे स्कूल से निकाल दिया गया। संसद में दर्जनों बार हंगामा हुआ। यह राष्ट्रीय बहस का मुद्दा बन गया। आखिरकार स्कूल के संविधान में संशोधन हुआ। मेरी विजय हुई। भारतीय भाषाओं के माध्यम से उच्च शोध के दरवाजे खुले। इन दरवाजों को खुले ५० साल हो गए लेकिन इनमें से दर्जन भर पीएच.डी. भी नहीं निकले। क्यों ? क्योंकि अँग्रेजी की गुलामी सर्वत्र छाई हुई है। जब तक हमारे देश की सरकारी भर्तियों, पढ़ाई के माध्यम, सरकारी काम-काज और अदालातों से अँग्रेजी की अनिवार्यता और वर्चस्व नहीं हटेगा, भारतीय भाषाएँ लंगड़ाती रहेंगी.

माँ की याद

आलोक कुमार सिंह

मै घर से चला हूँ कमाने को पैसे
तन्हाई मुझे पर सताती बहुत है।
है पहली द़फा तुझसे छूटा जो आँचल
मुझे याद माँ तेरी आती बहुत है।।

हुई जो सुबह तो मुझे याद आया
मेरी माँ ने खाना बनाया तो होगा।
मगर रो पड़ी होगी वो याद करके
मेरे लाल ने खाना खाया तो होगा।।

लगी भूख तो दिल ने माँ को ही डाँटा
माँ मुझको जो खाना खिलाती बहुत है।।
मै घर से चला हूँ कमाने को पैसे
तन्हाई मुझे पर सताती बहुत है।।

हुयी शाम रौनक शहर की तो सोचा
मेरी माँ ने दीपक जलाया तो होगा।
मगर उसको भी फिक्र होगी हमारी
कि दफ्तर से बेटा घर आया तो होगा।।

मै कैसे छुपाऊँ रहम हाल दिल का
ये दुनिया बेरहमी दिखाती बहुत है।।
मै घर से चला हूँ कमाने को पैसे
तन्हाई मुझे पर सताती बहुत है।।

जो रातों को लौटा कमा के तो सोचा
मेरी माँ ने खायी दवाई तो होगी।
मैं जगता रहा रात भर सोच कर ये
उसे नींद बिन मेरे आयी तो होगी।।

मैं हँसता था जिसपे सितम करके देखो
वही माँ मुझे अब रुलाती बहुत है।।
मै घर से चला हूँ कमाने को पैसे
तन्हाई मुझे पर सताती बहुत है।।

है पहली दफा तुझसे छूटा जो आँचल
मुझे याद माँ तेरी आती बहुत है।।

साहित्य के आकाश का ध्रुवतारा - विष्णु प्रभाकर

(विष्णु जी की जन्म तिथि पर विशेष - संपादक)

सपना मांगलिक

'मेरे उस ओर आग है,
मेरे इस ओर आग है,
मेरे भीतर आग है,
मेरे बाहर आग है,
इस आग का अर्थ जानते हो?'

जिस लेखक के अंतस में इतनी आग प्रज्ज्वलित हो वही शानदार, शाश्वत और मर्मान्तक साहित्य साहित्य जगत को भेंट कर सकता है। समकालीन समाज, परिस्थितयाँ और लोग एक भावुक हृदय को किस कदर प्रभावित कर सकते हैं यह विष्णु प्रभाकर की इस कविता से स्पष्ट हो जाता है। और जो दूसरों के दुःख को अपने में आत्मसात कर ले सही मायने में वही साहित्यकार है क्योंकि साहित्य समाज और समकालीन वातावरण और मूल्यों का ही लेखा-जोखा या आइना होता है।

विष्णु प्रभाकर का जीवन परिचय - २९ जनवरी १९१२ को उ॰प्र॰ के मुज़फ़्फरनगर जिले के एक छोटे से गाँव मीरापुर में जन्में विष्णु प्रभाकर के पिता दुर्गा प्रसाद एक धार्मिक व्यक्ति थे। इनकी माँ महादेवी इनके परिवार की पहली साक्षर महिला थीं जिन्होंने हिन्दुओं में पर्दा प्रथा का विरोध किया। १२ वर्ष के बाद, अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद, विष्णु प्रभाकर आगे की पढ़ाई करने के लिए अपने मामा के पास हिसार चले गये, जहाँ इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। यह १९२९ की बात है। वे आगे भी पढ़ना चाहते थे, लेकिन आर्थिक हालात इसकी इजाजत नहीं देते थे, अतः इन्होंने एक दफ़्तर में चतुर्थ श्रेणी की एक नौकरी की और हिन्दी में प्रभाकर, विभूषण की डिग्री, संस्कृत में प्रज्ञा और अँग्रेजी में बी.ए. की डिग्री भी प्राप्त की। चूँकि पढ़ाई के साथ-साथ इनकी साहित्य में भी रुचि थी, अतः इन्होंने हिसार की ही एक नाटक कम्पनी ज्वाइन कर ली और १९३९ में अपना पहला नाटक लिखा हत्या के बाद। कुछ समय के लिए इन्होंने लेखन को अपना फुलटाइम पेशा भी बनाया। २७ वर्ष की अवस्था तक ये अपने मामा के ही परिवार के साथ रहते रहे, वहीं इनका विवाह १९३८ में सुशीला प्रभाकर से हुआ। विष्णु के नाम में प्रभाकर कैसे जुड़ा, उसकी एक बेहद रुचिपूर्ण कहानी है। तब वह विष्णु नाम से लिखा करते थे एक बार जब एक संपादक ने पूछा कि आप कहाँ तक शिक्षित हैं तो उन्होंने बताया कि उन्होंने प्रभाकर किया है और बस तब ही से उन संपादक महोदय द्वारा उनका नामकरण विष्णु प्रभाकर के रूप में हो गया। इस प्रकार विष्णु दयाल के रूप मे शुरू हुई उनकी प्रारंभिक यात्रा विष्णु गुप्ता पर तनिक ठहर विष्णु धर्मदत्त को लाँघते हुये, विष्णु प्रभाकर बन कर पूरी हुई।

विष्णु प्रभाकर और कविता - विष्णु प्रभाकर से परिचित साहित्य-प्रेमी सहसा विश्वास न कर सकेंगे कि कथा-उपन्यास, यात्रा-संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, रूपक, फीचर, नाटक, एकांकी, समीक्षा, पत्राचार आदि गद्य की सभी सम्भव विधाओं के लिए विख्यात विष्णुजी ने कभी कविताएँ भी लिखी होंगी। सम्भवतया यह भी संयोग ही रहा कि उनके लेखन की शुरुआत (उनके कहे अनुसार) कविता से हुई और उनकी अंतिम रचना, जो उन्होंने अपने देहावसान से मात्र पच्चीस दिन पूर्व बिस्तर पर लेटे-लेटे अर्धचेतनावस्था में बोली, वह भी कविता के रूप में ही थी। भावुक हृदय में जब भावनाओं का ज्वार-भाटा आता है तो वह काव्य रूप में असंख्य कीमती मोती, मूँगे और सीप बिखेर के चला जाता है। जहाँ

तक हर बेहतरीन रचनाकार की जीवनी मैंने पढ़ी है सबमें यही बात सामान्य थी कि उन्होंने कविता से साहित्य का सफ़र शुरू किया और फिर साहित्य की गद्य विधा में अपने आपको स्थापित किया। प्रभाकर के पसंदीदा लेखक शरत और भारती भी इसका एक उदहारण हैं। सबके भावों की गागर सर्वप्रथम काव्य के सागर से ही भरी हुई थी। जब इस काव्य सागर से उन्होंने खुद की व्याकुलता को तृप्त कर लिया तो निकल पड़े साहित्य पिपासकों की क्षुधा शांत करने। विष्णु प्रभाकर ने अपनी कविता 'अहसास' के जरिये कहा है -

'सिसिफस
हनुमान
या
अश्वत्थामा
सभी मनुष्य थे
चढ़े और गिरे
लेकिन मैं नहीं गिरूँगा
मैंने अपने अहसास को
कील दिया है।'

विष्णु प्रभाकर और आवारा मसीहा - विष्णु प्रभाकर के स्वंय के अन्दर भावुकता की अग्नि निरंतर जलती थी तभी तो उन्होंने शोध के लिए ऐसे लेखक को चुना जिसे लोग आवारा बदचलन और न जाने क्या क्या कहते थे। मगर विष्णु प्रभाकर ने अपने हृदय की सुनी -

'मैंने उसकी कविता पढ़ी
शब्द थे केवल उन्नीस
पर मैं डूबा तो
डूबता ही चला गया
अवश, अबोल, आकंठ।'

और उस बदनाम लेखक की बदनाम गलियों तक भी जा आये और उसके अंतस की ज्वाला का इस तरह वृतांत खोजा जो आज तक जीवनी के क्षेत्र में न कोई खोज पाया है और न ही खोजे जाने की उम्मीद है । चौदह वर्षों तक किसी और साहित्यकार की जीवनी के लिए जगह-जगह की ख़ाक छानना यह सिर्फ़ विष्णु प्रभाकर जैसे विरले व्यक्ति ही कर सकते हैं। शरतचंद्र के जीवन को समेटकर उनका लिखा आवारा मसीहा आज भी अपने गहरे भावबोध और गुणवान का लोहा मनवा रहा है।

'शक्ति नहीं है
कर सकूँ निर्माण स्वर्ग का
बाधा बनूँ क्यों तब
उनकी
जिनकी मंज़िल है नरक।
कौन जाने वह नरक ही है
स्वर्ग मेरा
क्योंकि अंतत:
दिए हैं अर्थ
मैंने ही
शब्द को।'

विष्णु प्रभाकर जी का रुझान शरत की तरफ ही क्यूँ हुआ? इस सन्दर्भ में उनका ही यह कथन कि “सामने-सामने होय प्रणेयेर विनिमय के अनुसार शायद इसलिये हुआ कि उनके साहित्य में उस प्रेम और करुणा का स्पर्श मैंने पाया, जिसका मेरा किशोर मन उपासक था। अनेक कारणों से मुझे उन परिस्थितियों से गुज़रना पड़ा, जहाँ दोनो तत्वों का प्रायः अभाव था। उस अभाव की पूर्ति जिस साधन के द्वारा हुई उसके प्रति मन का रुझान होना सहज ही है। इसलिये शीघ्र ही शरतचंद्र मेरे प्रिय लेखक हो गये।” आवारा मसीहा के सृजन के लिए उनकी छटपटाहट और प्रतिबद्धता को स्पष्ट करता है। प्रभाकर जी हमेशा महिलाओं के भी पक्षधर रहे। वे अपने उपन्यासों में नारी वाद का समर्थन करते हैं। जब उनसे पूछा जाता कि स्त्री की संवेदनाओं के बारे में आप कैसे जानते हैं? तो वह कहते कि "मेरी पत्नी भी तो एक स्त्री ही है।” शरत के रहस्यमय और उलझे हुए जीवन की गुत्थी सुलझाने के साथ ही विष्णु प्रभाकर ने शरतचंद्र के किरदारों के स्रोत और रचना प्रक्रिया को टटोलने की दुष्कर चुनौती को भी स्वीकारा और उसका प्रामाणिकता के साथ निर्वहन भी किया। इसके लिए उन्होंने बंगाल, बिहार और बर्मा के बीच फैली कथा....देश में न जाने कहाँ-कहाँ के बिखरे कथा सूत्रों को जोड़ने के लिए गहन यात्राएँ कीं। तब जाकर १९ सालों के लंबे समय में उन्हें हासिल हुई 'आवारा मसीहा' की उपलब्धि। यह प्रामाणिक जीवनी विष्णु प्रभाकर के धैर्य और लेखकीय साहस का प्रतीक है।

विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ - विभाजन के बाद लिखी उनकी कहानी 'धरती अब भी घूम रही है', अकेली ही उनको गुलेरीजी की 'उसने कहा था' के समकक्ष रखने को पर्याप्त थी, जिसमें उन्होंने एक गरीब ठेलेवाले को म्युनिसिपैलटी के कारिंदों द्वारा गिरफ्तार होते हुए चित्रित किया था। मामले का फैसला करने वाले जज को बतौर रिश्वत, लड़कियाँ पसंद हैं, यह जानकर ठेलेवाले का ग्यारह साल का बेटा नौ साल की अपनी मासूम बहिन को लेकर भरी महफिल में पहुँच जाता है। चेतना को कहीं बहुत भीतर तक अवसन्न कर देने वाली इस कहानी में विष्णु प्रभाकर सवाल करते हैं, इस घटना के बाद हैरत है, धरती अब भी घूम रही है? उनकी रचनाओं में ‘अधूरी कहानी’ भी है। समय है बँटवारे से थोड़े पहले का यानी बँटवारे के बन रहे हालात का। यह वह समय था जब नफ़रत दोनों तरफ के दिलों में ठूँस-ठूँस कर भरी जा रही थी। इस कहानी में दो धर्मों के दो युवक बँटवारे को सही-गलत ठहराने में उलझ रहे हैं। अंत में एक प्रश्न उठता है कि ‘सच कहना, मुहब्बत की लकीर क्या आज बिल्कुल ही मिट गयी है? यह कहानी का चरम नहीं है, उसका मर्म है। बँटवारे के समय और उसके बाद मुहब्बत को जिलाये रखने की सबसे ज़्यादा जरूरत थी।

उनकी रचनाओं में विषय की काफी विविधता देखी जाती है। घटनाओं का उन्होंने भरपूर इस्तेमाल किया है। उनकी रचनाओं में विवरण के बजाय मार्मिक तत्व ज़्यादा है। 'धरती अब भी घूम रही है’ भ्रष्टाचार को अनावृत नहीं करती है। क्योंकि वह तो खुद ही नंगा है। कहानी उससे बाहर निकलने के प्रयासों में उसके चक्रव्यूह में फँस जाने की विवशता को उठाती है। दो बच्चे यहाँ भावी पीढ़ी का प्रतीक भी हैं और निरीह तथा तंत्र की चालाकियों से अनभिज्ञ सबको अपने जैसा सच्चा मानने के भोलापन का द्योतक भी । कथा जगत का वांग्मय उनकी सेवा से जितना समृद्ध हुआ है उससे कहीं ज़्यादा विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों में उन्होंने अथक योगदान दिया।

विष्णु प्रभाकर की लघुकथाएँ - उन्होंने साहित्य की विवादस्पद तथा अनेक प्रश्नों व संदेहों के घेरे में घिरी विधा 'लघुकथा' को भी प्रारम्भ से ही अपना लिया था और १९३८-१९८७ तक अनेक लघु कथाएँ लिखीं जो समय-समय पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में छपीं और सराही भी गयीं। लघु कथाओं का उनका पहला संग्रह 'जीवन पराग' १९६३ में प्रकाशित हुआ। जीवन के सभी उदात्त पक्षों को उजाकर

करती हुईं छोटी-छोटी ये मार्मिक कथाएँ, जो सभी सत्य पर आधारित थीं, लेखक उन्हें लघु कथाओं के रूप में रेखांकित नहीं करना चाहते क्योंकि उनका मानना है कि सत्य मात्र होने के कारण ही कोई रचना कहानी नहीं बन जाती। उसी दशक में विष्णु प्रभाकर ने रेडियो के विदेश विभाग के लिए पौराणिक साहित्य से चुन कर ऐसी कथाएँ सीमित शब्दों में लिखीं जो सुनने और पढ़नेवालों को भारतीय संस्कृति के विभिन्न रूपों की पहचान कराने वाली थीं। इनके चार संग्रह उपलब्ध हैं और उन्हें भी लेखक लघुकथा के अंतर्गत शामिल करना नहीं चाहते। ८० के दशक में लघुकथा का पुनर्मूल्यांकन हुआ तथा १९८२ में दिशा प्रकाशन से विष्णु प्रभाकर जी की लघु कथाओं का दूसरा संग्रह 'आपकी कृपा है' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कुल ४६ रचनाएँ संकलित थीं और वे भी विभिन्न कारणों से विवादस्पद बनीं किन्तु प्रशंसित हुईं। इस संकलन की कथाओं की भाषा को लेकर विद्वानों में अनेक मतभेद थे। विष्णु प्रभाकर स्वयं भी इस विवाद में पड़ना नहीं चाहते थे और इसी लिए उन्होंने कभी लघु कथा लिखने का दावा भी नहीं किया। 'आपकी कृपा है' के 'दो शब्द' में विष्णु प्रभाकर जी ने लिखा है, "लघु कथा की विधा को लेकर आजकल बहुत उहापोह मचा हुआ है। उसकी एक सुनिश्चित परंपरा है या वह एक नितांत नयी विधा है अथवा उसकी कुछ उपयोगिता है या वह मात्र चुटकुले बाज़ी है या जो किसी अन्य विधा में सफलता नहीं पा सकते, वे ही लघु कथा के क्षेत्र में आकर चहकने लगते हैं। प्रारंभ में एकांकी तथा प्रयोगवाद, नयी कविता आदि को भी आलोचनाओं का शिकार होना पड़ा। निराला जी भी इस विवाद से बच न सके। कुछ लोग इसे मृत विधा भी कह गए। प्रमाण है कि एकांकी आज साहित्य की एक लोकप्रिय तथा सशक्त विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। विष्णु प्रभाकर ने सन १९३९ में लघुकथा का लेखन प्रारंभ किया था। उनकी पहली लघु कथा 'सार्थकता' शीर्षक से 'हंस' पत्रिका के जनवरी १९३९ के अंक में प्रकाशित हुई थी। इसमें एक फूल की व्यथा को बड़े मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। अब तक प्रभाकर जी की लघु कथाओं के तीन संग्रह प्रकाशित हुए है - 'जीवन पराग' (१९६३), 'आपकी कृपा है' (१९८२), तथा 'कौन जीता कौन हारा' (१९८९) में प्रकाशित हुए। उनकी सम्पूर्ण लोककथाओं का एक संग्रह 'सम्पूर्ण लघु कथाएँ' शीर्षक से सन २००९ में प्रकाशित हुआ है जिसमें उनकी कुल १०१ लघु कथाएँ संकलित हैं। 'जीवन पराग' की भूमिका में विष्णु प्रभाकर जी ने लिखा है कि ये बोध कथाओं का संग्रह है। दूसरे संग्रह 'आपकी कृपा है' में पहले संग्रह की कुछ रचनाएँ सम्मिलित की गयीं हैं। इसी प्रकार दूसरे लघुकथा संग्रह 'आपकी कृपा है' में १५ और नयी लघुकथाएँ जोड़ कर विष्णु जी का तीसरा संग्रह 'कौन जीता कौन हारा' प्रकाशित हुआ। विष्णु प्रभाकर की लघु कथाएँ अपनी प्रवृति में मानव-मन की अंतर्यात्राओं के रूप में उभर कर समक्ष आती हैं। उनके लेखन में मानवीय मन के विविध चित्रों की अनेक बहुरंगी झाकियाँ दिखाई देती हैं। मानव मन में अनेक भाव और विचार उठते हैं जो उसके मन एवं मस्तिष्क को निरंतर मथते रहते हैं, तदनुसार उसके कार्यों को प्रेरित और प्रभावित भी करते रहतें हैं। अपने आस-पास के वाह्य संसार से प्राप्त अनुभवों के अनेक टेढ़े-मेढ़े गलियारों से होकर गुज़रता हुआ, विभिन्न अनुभूतियों, संवेदनाओं को अपने अंतर में

समेटता हुआ मानव, अंततः अपनी यात्रा मन पर ही आकर समाप्त करता है। मन ही मनुष्य से वह सब कुछ करवाता है जो उसे कभी तो उच्चता के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ कर देता है तो कभी निम्नता के गह्वर में ले जा कर पटक देता है या फिर तटस्थ मूक दर्शक बना देता है। अच्छा या बुरा, पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म ये सब मानव-मन के ही रचे हुए प्रपंच हैं। उसका मस्तिष्क मन को अपने तर्क-वितर्क के जाल में उलझाकर उसे भ्रमित कर देता है। किन्तु, मन ही चतुर खिलाडी के समान स्वयं खेल निर्धारित करता है और खेल के नियम भी वही बनाता है। अपने खेल में खिलाडी वही और खेल का प्रतिद्वंद्वी भी वह स्वयं ही होता है। अपने रचे इस खेल में विजेता भी वही बनता और हारने वाला भी वही। मन और मस्तिष्क के अलावा भी एक तत्व ऐसा है जो मानव संसार को 'मानव संसार' बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह है - मन के साथ घनिष्टता से जुडी हुई संवेदनाएँ। अंतर्द्वन्द्व के धुँधले रास्तों से गुज़रती हुई मन के किसी कोने में छिप कर बैठी हुईं संवेदनाएँ मस्तिष्क के तर्कों-कुतर्कों के घने जाल से स्वयं को मुक्त करती हुईं अपना रास्ता तलाशती हैं और अंततः अपनी मंजिल पा जाती हैं। वह मंजिल है - मानवता की, मानवीय संवेदनाओं की जो नैतिकता और जीवन मूल्यों के सुदृढ़ स्तंभों पर आधारित है।

विष्णु प्रभाकर की प्रत्येक लघुकथा में मानव मन की अंतर्यात्रा के ऐसे अनेक मार्मिक चित्र बिखरे पड़े हैं जो जीवन मूल्यों से अनुप्राणित होकर उसके अंतरतम को दीप्त ही नहीं करते, वरन वाह्य जगत को भी आलोकित करते हैं। ये लघुकथाएँ दुविधा से मुक्त करके सत्कर्म की राह पर चलना सिखाती हैं, मानव को मानव बनना सिखाती हैं। 'अभी आती हूँ' में सेवा का वास्तविक अर्थ तब उजागर होता है जब मुंशी जी प्लेग की गिल्टी निकल आये अपने नौकर को इसलिए छोड़कर जाने को तैयार नहीं होते क्योंकि, "जन्म भर रामू ने मेरी सेवा की। अब जब उसके सिर पर मौत मंडरा रही है, मैं उसे छोड़ कर कैसे जा सकता हूँ।" इसी प्रकार 'मूक शिक्षण' लघु कथा मन की गहराइयों तक मानवीय संवेदनाओं के तारों को झंकृत कर जाती है। फुलेना प्रसाद भयंकर जाड़ों में भी इसलिए कोट नहीं पहनना चाहते क्योंकि गरीबी और गंदगी में रहने वाले मजदूरों के शरीर पर वस्त्र नहीं थे और न पेट में अन्न। प्रभाकर जी की लघु कथाओं में जीवन का शुभ और सुन्दर पक्ष द्वंद्व के माध्यम से उभर कर सामने आया है। वस्तुतः क्या होना चाहिए से अधिक महत्वपूर्ण है, कैसे होना चाहिए। विष्णु प्रभाकर की लघुकथाओं में सर्वत्र जीवन मूल्यों और आदर्शों के सच्चे मोती बिखरे पड़े हैं। इनमें मनुष्य की भीतरी शक्ति और सद्गुणों का प्रकाश सर्वत्र फैला है।

विष्णु प्रभाकर के साहित्य में मानवता - हिन्दू-मुस्लिम समस्या भारत की एक ऐसी शाश्वत समस्या बन गयी है जिसका अंत देश के बँटवारे के बाद भी नहीं हो सका है। फर्क, पानी की जात, जात या जान, मोहब्बत आदि अनेक लघुकथाएँ इस परिदृश्य को एक नयी राह पर ले जाने को उत्प्रेरित करती हैं। 'जात या जान' की ज़द्दोज़हद में जात की ही हार होती है और होनी भी चाहिए। प्यास से व्याकुल एक हिन्दू युवक मुसलमान किसान की कुटिया में पहुँच कर पानी माँगता है - उसने हाँफते-हाँफते किसी तरह कहा, "पानी"। उस युवक ने उसकी ओर देखा और कहा, "मैं मुसलमान हूँ।" "तो क्या हुआ?" उसने

कहा, "होता क्या, मैं तुम्हारी जात नहीं ले सकता। तुम हिन्दू हो। अपने रास्ते जाओ।" "मैं जात नहीं जान की बात कर रहा हूँ तुम जान तो नहीं लोगे। मुझे पानी दो। मैं यहीं पड़ा हूँ। देखता हूँ तुम जात लेते हो या जान।" अंत में एक मानव पानी देकर दूसरे मानव की प्यास बुझाता है।

अपनी बहुचर्चित लघुकथा 'फर्क' में प्रभाकर जी ने 'देखन में छोटी लगे घाव करे गंभीर' कहावत को चरितार्थ किया है। यह आदमी ही है जिसने देश, जाति, धर्म, नस्ल और रंग की दीवारें खड़ी की हैं अन्यथा ये फ़र्क जानवर करना नहीं जानते। यही वह बिंदु है जहाँ आदमी स्वयं को जानवर से भी बद्तर जानवर पाता है। 'मोहब्बत' नामक लघुकथा में भावनात्मक स्तर पर सांप्रदायिक सद्भाव को दर्शाया गया है। ईद के दिन एक मुसलमान दोस्त अपने हिन्दू दोस्त के घर से दूध ले जाकर उससे बनी हुई सेवइयाँ बना कर जब हिन्दू दोस्त के घर जाता है तो उसकी माँ सेवइयाँ लेने से इंकार कर देती है। संयोग वश सेवियों का कटोरा वहीं दरवाजे पर गिर जाता है। यही कथा की चरमावस्था आती जो मन को झिझोड़ जाती है और मानवता की राह तक ले जाती है - 'वे सेवइयाँ नहीं थी, इन्सान की मोहब्बत थी जो मेरे दरवाजे पर पैरों से रौंदे जाने के लिए पड़ीं थी।" यह निष्कर्ष वाक्य वैमनस्य से जलते हुए मन को मानों सहिष्णुता का शीतल जल पिला कर भीतर तक शांत कर जाता है।

'क्या तपन, क्या दहन,
क्या ज्योति, क्या जलन,
क्या जठराग्नि-कामाग्नि,
नहीं! नहीं!
ये अर्थ हैं कोष के, कोषकारों के
जीवन की पाठशाला के नहीं'

विष्णु प्रभाकर का बाल साहित्य - विष्णु प्रभाकर की कथा यात्राओं का एक पड़ाव है - बाल-मन की यात्रा। बच्चों को पास से देखने और उनके मन का अध्ययन करने का विष्णु जी को बहुत अवसर मिला है। यह बात उन्होंने स्वयं भी स्वीकार की है। उनकी संवेदनशीलता और उनके निरीक्षण करने की क्षमता से प्रभाकर जी अत्यंत प्रभावित थे। बच्चे जो कुछ भी कह या कर जाते है, उन पर सहसा विश्वास नहीं होता। बच्चों के भोले और निश्छल मन की सहजता से माँगी गयी हर सच्ची पुकार ईश्वर के दरबार में स्वीकार की जाती है, किन्तु जैसे-जैसे वे बड़े होते जाते हैं, बालपन में आत्मा की यह पवित्रता धुँधलाने लगती है, उस पर स्वार्थ की अनेक परतें चढ़ने लगतीं हैं। निःस्वार्थ मन से की गयी प्रार्थना और स्वार्थ भरी प्रार्थना के अंतर को 'वह बच्चा थोड़े ही न था' नामक लघु कथा में बड़े ही मार्मिकता के साथ दर्शाया गया है। एक लेखक बिजली जाने से परेशान थे। पाँच घंटे गुज़र जाने के बाद भी बिजली नहीं आयी। लेखक अपने ढाई वर्ष के शिशु से कहते हैं, "बेटे! बिजली रूठ गयी है, ज़रा बुलाओ तो उसे।" शिशु ने सहज भाव से बिजली को पुकारा और संयोग से बिजली आ जाती है। देर रात तक पति घर नहीं लौटते तो पत्नी अपनी छोटी बच्ची से बोली, "बेटी, तुम्हारे पापा अभी तक नहीं आये। बहुत देर हो गयी। तुम उन्हें पुकारो तो।" संयोग वश बच्ची के पुकारते ही दरवाजे पर पापा खड़े मुस्करा रहे थे।

किन्तु, अपनी प्रिय पत्नी की मृत्यु के बाद एक पति जब सच्चे मन से पुकारता है, "प्रिये! तुम लौट आओ, मैं तुम्हारे बिना नहीं रह पा रहा।" तो वह नहीं आती है। बाल-मन की सहजता और निर्मलता के सामने वयस्क मन को मानों उन्होंने एक चुनौती दी है। बालमन की यात्रा के दौरान उनके मन के भीतर की स्वाभाविक जिज्ञासा, उत्सुकता, प्रश्नाकुलता, स्नेहासिक्त तरलता तथा बाल-बुद्धि की प्रौढ़ता को विष्णु जी ने जिस सहजता से दर्शाया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। बच्चों के मन में चल रहे द्वंद्व का बाहर से आभास लगाना अत्यंत कठिन होता है। सबसे तेज़ गति मन की, शैशव की ज्यामिति, वह शरारत, शैशव का भोलापन, शैशव, तो अच्छा, दो बच्चों का घर आदि लघु कथाओं में इसी सत्य को दर्शाया गया है। 'शैशव की ज्यामिति - तीन कोण' नामक कथा में चार वर्षीय बेटे टिंकू की शरारतों से माता-पिता दोनों त्रस्त हैं। टिंकू अपने माता-पिता के साथ ही अपनी दादी का भी बहुत दुलारा है। टिंकू की शरारतें जब सीमाएँ लाँघ जाती हैं तो खीज कर उसके पिता उसके गाल पर तड़ातड चाँटे जड़ देते हैं। टिंकू तड़प कर कह उठता है, "भगवान के पास जाते हुए अम्मा कह गयी थीं बच्चों को डाँटना मत, प्यार से रखना और आप मुझे इतनी जोर से मारते हैं। मैं अम्माँ के पास चला जाऊँगा। विष्णु जी जितने अच्छे लेखक थे उतने ही सहज। उन्होंने बाल साहित्य का भी खूब सृजन किया। उनका मानना था कि बचपन जीवन का ऐसा आईना होता है जो आगे की दिशा निर्धारित करता है। प्रभाकर जी ने जिस लगन से बाल साहित्य लिखा, तन्मयता से लिखा, वह बेजोड़ है।

'मुँह-से-मुँह मिलाकर
बोले वह
बुर्र बुर्र बुर्र
कानाबाती कुर्र कुर्र कुर्र
टीली-लीली झर्र-झर्र-झर्र
अरे रे रे
दुर्र दुर्र दुर्र'

उनका मानना था कि बच्चों को रोचकता के साथ ज्ञान सामग्री उपलब्ध कराने की ज़रूरत है। उनकी महत्वपूर्ण बाल एंकाकी और बाल कहानियाँ है। 'जादू की गाय' संग्रह में उनकी बाल एकांकियाँ संकलित हैं। उनका बालनाटक जो कक्षा चार, पाँच के पाठ्यक्रम में लिया गया वह बच्चों की चतुराई से जुड़ा हुआ है। बच्चों के सूक्ष्म मनोविज्ञान को उन्होंने सहजता, सरलता से अंकित किया है।

विष्णु प्रभाकर के प्रसिद्ध नाटक - विष्णु प्रभाकर को जीवनी के अलावा सबसे ज्यादा ख्याति जिस विधा में मिली वो उनके द्वारा लिखी एकांकी हैं। शुरू-शुरू में उन्होंने एक थर्ड ग्रेड नाटक कम्पनी के लिए 'हत्या के बाद' जैसा नाटक लिखा! यह और बात है कि यह नाटक भी चर्चित हो उठा। उसके बाद वह हिसार में एक नाटक मंडली के साथ भी कार्यरत हो गये। इसके पश्चात् प्रभाकर जी ने लेखन को ही अपनी जीविका बना लिया। आज़ादी के बाद १९५५-५७ के बीच इन्होंने आकाशवाणी, नई दिल्ली में नाट्य-निर्देशक के तौर पर काम किया। प्रभाकर की रचनाओं में प्रारम्भ से ही स्वदेश-प्रेम, राष्ट्रीय चेतना और समाज सुधार का स्वर मुखर रहा है। अत: उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और स्वतंत्र लेखन को अपनी जीविका का साधन बना लिया। रंग और शिल्प की दृष्टि से

प्रभाकर के अधिकांश एकांकी रेडियो-रूपक हैं। उनकी पहली कहानी १९३१ में लाहौर की पत्रिका में छपी थी। और काफी पसंद भी की गयी थी। बस फिर क्या इस कहानी से उनकी लेखनी के पंखों में हरकत हुई जो बाद में जाकर इस पंक्षी को साहित्य के दूर विस्तृत असीम अनंत आसमान की सैर करा लायी। गंभीर से गंभीर बात को आसानी से कह देना उनकी शैली है। एक नाटककार के रूप में विष्णु प्रभाकर ने लोक साहित्य तथा स्टेज की माँग पूरी करते हुए एक अलग पहचान बनाई।

प्रभाकर का नाटक 'डाक्टर' जहाँ आज भी अपनी ख्याति की कसौटी पर खरा उपस्थित है वहीं एकांकियों में प्रकाश और परछाई, बारह एकांकी, क्या वह दोषी था, दस बजे रात आदि इस विधा में मील के पत्थर के रूप में आज भी मौजूद हैं।

विष्णु प्रभाकर और गाँधी - विष्णु प्रभाकर को साहित्य का गाँधी कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी क्योंकि उनपर महात्मा गाँधी के दर्शन और सिद्धांतों का गहरा प्रभाव था। प्रभाकर जी में आप वे सारे गुण-अच्छाईयाँ देख सकते हैं, जो गाँधी आन्दोलन के समय गाँधी जी के मूल्य थे। उनके लेखन में गाँधी वादी धार्मिकता, अहिंसकता, उदारता आदि सभी कुछ देखने को मिलता है। यहाँ तक कि उनकी वेशभूषा जिसमें उनका झोला, उनकी टोपी साक्षात उन्हें गाँधीवादी सिद्ध करता है। और इसके चलते ही उनका रुझान काँग्रेस की तरफ हुआ और स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने अपनी लेखनी का भी एक उद्देश्य बना लिया, जो आजादी के लिए सतत संघर्षरत रही। 'मैं जूझूँगा अकेला ही' जैसी उनकी कविताएँ जीवन में कठिन संघर्षों से जूझने की प्रेरणाएँ देती हैं। अपनी मृत्यु से पहले ही उन्होंने अपने शरीर को दान कर दिया था। इसका सीधा अर्थ था कि वे पुनर्जन्म को नहीं मानते थे, उनके परिवार में जाति वाद नहीं था। उन्होंने नई परम्पराओं, नए मूल्यों को समाज में स्थापित किया। हमेशा पूँजी वाद, साम्राज्यवाद का विरोध किया। अपने दौर के लेखकों में वे प्रेमचंद, यशपाल, जैनेंद्र और अज्ञेय जैसे महारथियों के सहयात्री रहे, लेकिन रचना के क्षेत्र में उनकी एक अलग पहचान रही। देश व समाज के लिये उनका स्पष्ट विज़न था। गाँधीवाद का पुरजोर समर्थन, उनके ही शब्दों में "अन्याय और हिंसा का प्रतिकार हर हाल में होना चाहिए । झुकना बहुत बड़ी कमजोरी है, मैं झुकने में यकीन नहीं करता। गाँधी ने दूसरों के लिए जीवन जीने की सीख दी। मेरे अंतरतम का विश्वास है कि लोग इस पर चल सकें तो समस्याएँ सुलझ जायेंगी। मनुष्य बेहतर नागरिक बन सकेंगे। फिर भी गाँधीवाद को सामाजिक संगठन या शासन विधि के रूप में नहीं लिया गया। सफलता या असफलता का पता तभी चलेगा जब लोग इसे प्रयोग में लायेंगे। विकासशील देशों में ग्राम स्वराज्य का तरीका अपनाया गया। और जापान ने नयी तालीम को अपनाया।"

उनकी कविता : "एक छलावा" से इस सन्दर्भ में उनके विचार स्पष्ट होते हैं -

'बापू!
तुम मानव तो नहीं थे
एक छलावा थे
कर दिया था तुमने जादू
हम सब पर
स्थावर-जंगम, जड़-चेतन पर
तुम गए
तुम्हारा जादू भी गया
और हो गया
एक बार फिर नंगा

यह
बेईमान
भारती इन्सान।'

स्वाभिमानी विष्णु प्रभाकर - पदम् भूषण सम्मान लौटाते वक्त उनका यह कथन कि "वैसे भी इस तमगे की बाजार में कोई कीमत तो है नहीं। मुझे क्या मिलने वाला है इससे? जो मिलना था, बहुत मिल चुका। अब मुझे किसी भी चीज की स्पृहा नहीं है। ऐसे अलंकरण से कहीं ज्यादा संतोषदायी बात मेरे लिए यह है कि मेरा लेखन चलता रहे। जो अपने नाम के पीछे पद्मश्री - पद्मविभूषण लगाने में गौरव समझते हैं, वे लोग शायद नहीं जानते कि ऐसा करना जुर्म है। यह तो महज अलंकरण है, नाम और उपाधि का हिस्सा नहीं है।"

उनका मानना था कि स्वंय के लिए नहीं वरन, समाज के लिए चलो, राष्ट्र के लिए चलो। प्रभाकर जी आन्दोलनों से कभी नहीं जुड़े। वे ऐसे रचनाकार थे जो न किसी आलोचक से प्रभावित हुए। उन्होंने वही किया जो उनकी भीतरी विचारधारा कहती थी।

'मेरे अँधेरे बंद मकान के
खुले आँगन में
कैक्टस नहीं उगते
मनीप्लांट ख़ूब फैलता है
लोग कहते हैं
पौधों में
चेतना नहीं होती।'

रचनाकार अपने ही कारणों से बड़ा होता है - आलोचना से बड़ा नहीं होता। प्रभाकर जी ने कहा भी है कि मैं सीधा-सादा आदमी हूँ और वैसा ही लिखता भी हूँ। जब हम उनकी कहानी-उपन्यास किसी भी विधा पर बात करें तो यह बात ध्यान रखनी चाहिए जनता से जुड़ने, सादगी आदि बातों में वे प्रेमचन्द की परम्परा के लेखक थे। सादगी-सरलता का अपना सौन्दर्य शास्त्र है। जिस तरह भगीरथ गंगा को धरती पर लाए उसी तरह विष्णु जी ने भी इस धरती पर भी साहित्य को रोपा। वे हिन्दी जगत के पहले ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने हिन्दी की सभी विधाओं में काम किया। जिस तरह मुंशी प्रेमचन्द को उपन्यास सम्राट कहा जाता है, उसी तरह वे संस्मरण सम्राट हैं। पत्रों का जखीरा विष्णु जी के अलावा कहीं नहीं मिलता। उनके साहित्य के साथ-साथ उनके द्वारा लिखे गए प्रेम पत्र भी साहित्य जगत की धरोहर बने।" साहित्य के ध्रुवतारे का खो जाना -

'आदमी मर गया कभी का
पीढ़ियाँ ज़िन्दा हैं
सूरज बुझ जाएगा एक दिन
पर आकाश अमर है
सूरज के बिना
वह आकाश कैसा होगा!'

साहित्य के इस मजबूत स्तम्भ ने २००९ के अप्रैल महीने की ११ तारीख को इस लोक से विदा ले ली। विष्णु जी का जाना हिंदी साहित्य जगत को सूना कर गया। हिन्दी साहित्य ने एक महान व्यक्तित्त्व खो दिया। नि:संदेह वे अप्रतिम व्यक्तित्व के धनी थे एवं महान साहित्यकार थे। हिंदी साहित्य

जगत ने एक महान विभूति खो दी है, आज विष्णु प्रभाकर जीवित नही हैं, लेकिन उनका साहित्य अमर है।

'मैंने बीते हुए युग की
कथा लिखी थी
वह सच नहीं हुई
तुम आनेवाले क्षण की
कहानी लिख रहे हो
वह भी सच नहीं होगी,
काल सबको ग्रस लेगा
शेष रह जायेगा दंभ
मेरा, तुम्हारा, उसका
तुम जानते हो किसका
बोलो नहीं, क्योंकि...
जो भी तुम बोलोगे
झूठ होगा सब।'

ग़ज़ल

दयानन्द पाण्डे

बेटी का पिता होना आदमी को राजा बना देता है
शादी खोजने निकलिए तो समाज बाजा बजा देता है

राजा बहुत हुए दुनिया में पर बेटी का पिता वह घायल राजा है
जिस के मुकुट पर हर कोई सवालों का पत्थर उछाल देता है

हल कोई नहीं देता सब सवाल करते हैं जैसे प्रहार करते हैं
बेटी का बाप है आख़िर हर किसी को सारा हिसाब देता है
लड़के का बाप तो पैदाईशी ख़ुदा है लड़की के पिता को
यह समाज सर्कस की एक चलती फिरती लाश बना देता है

लड़का चाहता है विश्व सुंदरी नयन नक्श तीखे नौकरी वाली
माँ चाहती है घर की नौकरानी बेटे का बाप बाज़ार सजा देता है

नीलाम घर सजा हुआ है दुल्हों का फरमाईशों की चादर ओढ़े
कौन कितनी ऊँची बोली लगा सकता है वह अंदाज़ा लगा लेता है

विकास समानता बराबरी क़ानून ढकोसला है समाज दोगला है
लड़कियाँ कम हैं अनुपात में पर दाम लड़कों का बढ़ा देता है

पढ़ी लिखी हैं सुंदर हैं नौकरी वाली भी हुनर और सलीक़े से भरपूर
जहालत का मारा सड़ा समाज उन्हें औरत होने की सज़ा देता है

उम्र बढ़ाती हुई बेटियाँ ख़ामोश हैं, पिता सिर झुकाए बैठे हैं
बेरहम वक्त उन के सुलगते अरमानों का ताजिया उठा देता है

बात करते हुए वह आकाश देखता है, बोलता कम टटोलता ज़्यादा है
लड़के का बाप है उस की ऐंठ अकड़ और अहंकार यह बता देता है

मसाला खाते शराब पीते भईया यहाँ वहाँ मुँह मारने में टॉपर हैं
बेटे का बाप उसे हुंडी समझता है शादी के बाज़ार में भुजा देता है

सिर के बाल भी ग़ायब चेहरे पर अय्याशियों के भाव अटखेलियाँ करते
आँख से दारु महकती है बाप का जलवा उसे मँहगा दूल्हा बना देता है

जितने ऐब हैं ज़माने में सभी से सुसज्जित है हर कोई जानता समझता
लेकिन बेटे का बाप अंधा होता है उसे सारे गुणों की खान बता देता है

पंडित है, लग्न लिस्ट तमाम चोंचले भी बता तू कहाँ-कहाँ फिट होता है
आप को नहीं मालूम कोई बात नहीं इवेंट मैनेजर यह सब बता देता है

संस्कार और रिश्ता नहीं अब तड़क-भड़क है इवेंट का तमाशा है
शादी के रिश्ते को यही इवेंट करोड़ों अरबों का व्यापार बना देता है

आदमी किश्तों में साँस लेता है टूटता बिखरता है और मर जाता है
यह शादी नहीं फाँसी की रस्म है जालिम समाज हर कदम बता देता है.

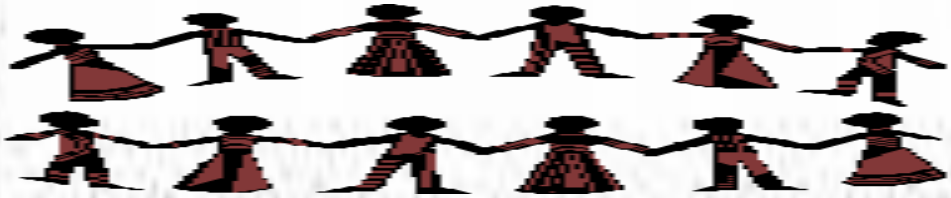

डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार

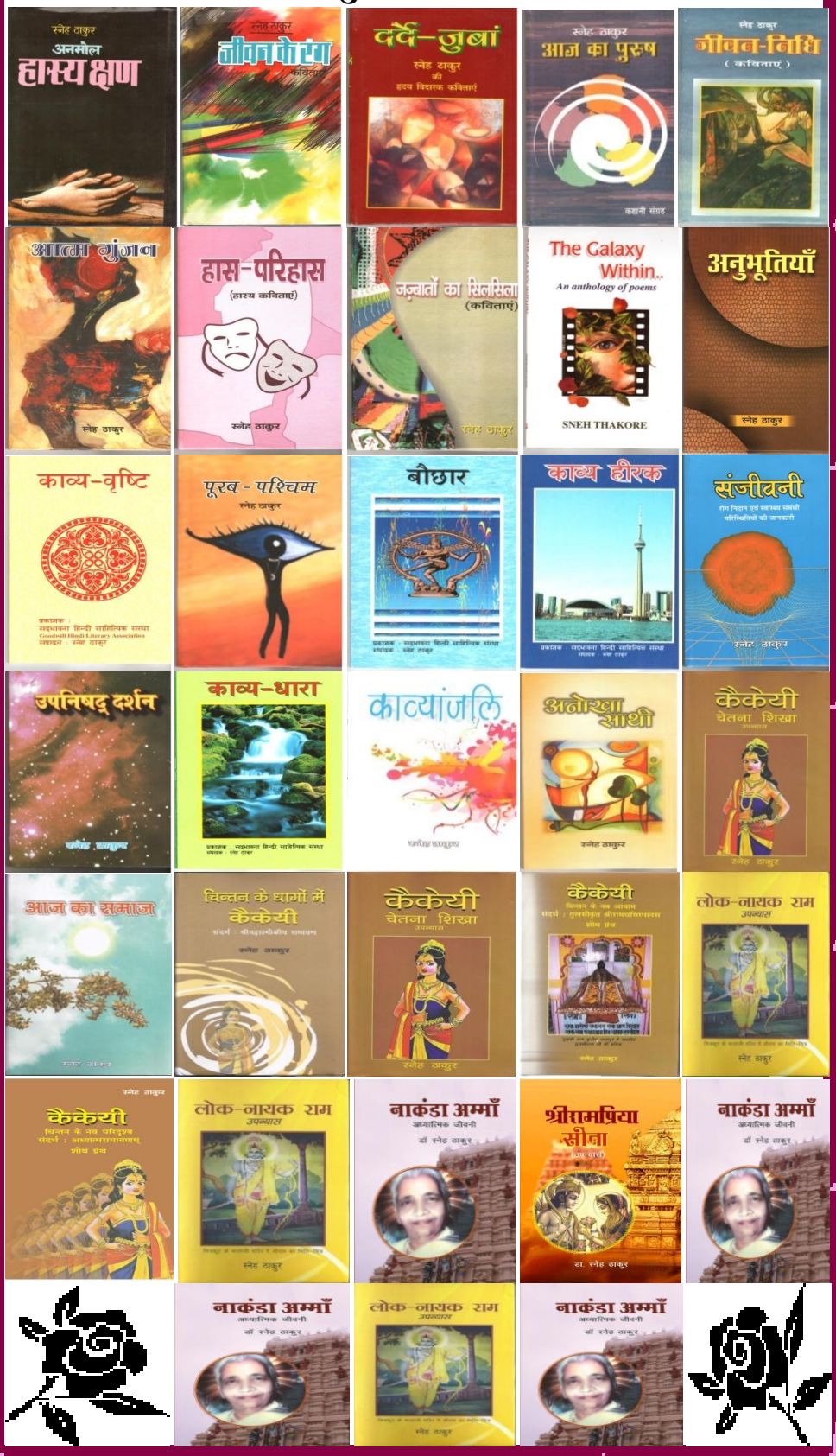

डॉ. स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, चतुर्थ संस्करण)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, द्वितीय संस्करण)
श्रीरामप्रिया सीता	(उपन्यास)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण)
कैकेयी : चिन्तन के नव परिदृश्य - संदर्भ : अध्यात्मरामायण	(शोध-ग्रन्थ)
लोक-नायक राम	(उपन्यास)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम - संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस	(शोध-ग्रन्थ)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, द्वितीय संस्करण)
चिन्तन के धागों में कैकेयी - संदर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण	(शोध-ग्रन्थ)
आज का समाज	(सामाजिक लेख-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
काव्य-धारा	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
उपनिषद दर्शन	(दार्शनिक एवं अध्यात्मिक)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी आलेख)
काव्य हीरक	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
बौछार	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
दर्दे-जुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह, फेडरल गवर्नमेन्ट, कैनेडा द्वारा अधिकतम अनुदान से सम्मानित)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२, भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW, England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित